इकाई–2
अध्याय–7
फलोत्पादन का महत्व, वर्तमान स्थिति एवं भविष्य
(Importance, Present Status & Future of Fruit Production)

भारतीय संस्कृति के महानतम ग्रंथ रामचरित मानस में फलोत्पादन का महत्व दर्शाते हुए तुलसीदास जी ने लिखा :–

सफल फूल फल कदलि रसाला। रोपे वकुल कदम्ब तमाला।

फल वृक्ष स्थान की सुन्दरता बढ़ाने, प्रदूषण दूर करने, भूमि का क्षरण रोकने, उर्वरा शक्ति बढ़ाने, प्रति ईकाई अधिक उत्पादन, अधिक आय, मानव रोजगार दिवस सृजन के साथ–2 स्वास्थ्यवर्धक, औषधीय गुणों से परिपूर्ण लुभावने फल हमें उपलब्ध कराते है।

भारत में बेर, आम, आँवला, नारियल, अंजीर आदि फलों की खेती प्राचीन काल से होती चली आ रही है विभिन्न प्राचीन पुस्तकों में इसका वर्णन मिलता है मुगल बादशााह अकबर ने दरभंगा (बिहार) के पास एक लाख आम के पौधे लगाये थे तथा विभिन्न यूरोपीय यात्रियों द्वारा नये फलों का प्रवेशन (Introduction) भारत में हुआ जिसमें अनन्नास, आलू बुखारा, पपीता, चीकू, एवोकैडो, अमरूद आदि प्रमुख थे।

वर्तमान परिवेश में प्रदूषण चरमसीमा पर है, कुपोषण व बेरोजगारी जैसी समस्याओं के हल में फल वृक्षों का व्यावसायिक स्तर पर रोपण एवं रख रखाव महती भूमिका अदा कर सकता है।

स्वतन्त्रता के बाद तीन पंचवर्षीय योजनाओं में उद्यानीकरण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका क्योकि उस समय की स्थिति को देखते हुए अनिवार्यता खाद्यान्न में आत्म निर्भरता की थी अतः हमारे देश में फल उत्पादन पर जोर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में दिया गया। इसी के तहत् अखिल भारतीय समन्वित फल सुधार परियोजना 1971 से आरम्भ की गई। जिसका मुख्य उद्देश्य इन फल फसलों की खेती में आने वाली समस्याओं का केन्द्र व राज्य साथ मिलकर निराकरण कर सकें। फलोत्पादन के महत्व को विभिन्न श्रेणियों में बता सकते हैं।

(1) मानव आहार में महत्व (Nutritional importance) :

फलों का पौष्टिक महत्व किसी से भी छिपा नहीं है।

पोषण महत्व (Nutritional importance)

	विटामिन	कमी के लक्षण	स्रोत
(i)	कैरोटीन	रतौंधी रोग जिसमें रोगी कम व तेज प्रकाश में देखने में परेशानी महसूस करता है। अन्य लक्षणों में आंखों पर सफेद दाग (बायटोट स्पोट्स) व कोरनिया का कमजोर एवं मुलायम पड़ जाना (केराटोमालेसिया) आदि हैं।	आम, पपीता, कटहल, एवोकैडो
(ii)	बी–1 (थायमिन)	बेरी–बेरी रोग जिसमें निर्बल शरीर, भूख में कमी, आलस्य जैसे लक्षण प्रकट होते हैं।	काजू, अखरोट, बादाम, केला, सेब
(iii)	बी–2 (राइबोफ्लेविन)	पेलेग्रा रोग जिसमें भूख एवं वजन में कमी के साथ त्वचा मोटी बदरंग हो जाती है।	बेल, लीची, पपीता, अनन्नास, अनार
(iv)	सी (एसकार्बिक अम्ल)	स्कर्वी जिसमें मसूड़ों से खून बहता है, जख्म का देरी से भरना इत्यादि।	बारबडोस चेरी, आँवला, अमरूद, बेर, नींबू प्रजाति के फल, अनन्नास, आम, पपीता
(v)	डी (अरगो स्टेरॉल)	रिकेट्स व ऑस्टोमलेशिया (सूखा रोग), हड्डियों की संरचना व मजबूती में कमी	––
(vi)	ई (फाइलोक्वीनॉन)	प्रजनन क्षमता में कमजोरी, बाँझपन	कटहल, बादाम

खनिज लवण (Mineral Salts)

खनिज तत्व	कमी के लक्षण	स्रोत
कैल्शियम	हड्डियाँ एवं दाँत कमजोर हो जाते हैं	फालसा, नींबू, बेर, बेल, सीताफल, इमली, बादाम, लीची, अंजीर, अमरूद
लोहा	खून की कमी हो जाती है (एनीमिया)	करौंदा, खजूर, दाख, अमरूद, फालसा, अंजीर, चीकू, बेर
आयोडीन	क्वार्टर (घेंघा) जिसमें गर्दन फूल जाती है	जामुन, केर
फॉस्फोरस	हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं	अनार, कटहल, आड़ू, पपीता, रसभरी, कैंथ, काजू
कार्बोहाइड्रेट	शर्करा व स्टार्च के रूप में उपलब्ध रहता है जो ऊर्जा प्रदान करता है	केला, खजूर, एवोकैडो
वसा	शारीरिक थकान व कमजोरी महसूस होती है	अखरोट, बादाम, खजूर, एवोकैडो
प्रोटीन	क्वाशियोरकर बीमारी हो जाती है	काजू, सीताफल, केला, एवोकैडो

कुछ महत्वपूर्ण फलों के पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम फल के खाने योग्य भाग में)

फल	विटामिन 'ए' (आई.यू.)	विटामिन 'बी' (मिग्रा)	विटामिन 'सी' (मिग्रा)	कैल्शियम (%)	फॉस्फोरस (%)	लोहा (%)	ऊर्जा (कैलोरी)
आम	4800	10	13	0.01	0.02	0.30	50
अमरूद	—	30	299	0.01	0.04	1.00	66
आँवला	—	30	600	0.05	0.02	1.20	59
अनार	—	—	16	0.01	0.07	0.30	65
बेर	186	12	15	0.03	0.05	0.30	129
करौंदा	—	—	200—500	0.16	0.06	3901	364
अंजीर	270	—	3	0.06	0.03	1.20	75
सीताफल	—	—	—	0.02	0.04	1.00	105
बेल	240	—	—	0.09	0.01	0.60	23
केला	—	150	1	0.01	0.05	0.40	153
पपीता	2020	40	46	0.01	0.01	0.40	40
अंगूर	—	—	3	0.03	0.02	0.40	45

रोजमर्रा की जिंदगी में चुस्त–दुरूस्त रहने से लेकर बीमारी के बाद कमजोरी से निवारण के लिए फलों से मिलने वाला पोषण बहुत उपयोगी है। मौसमी फलों में उपस्थित पोषक तत्व, खनिज लवण और विटामिन शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखते हैं, जिससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। उदाहरण के तौर पर पीले रंग के फल विटामिन 'ए' से भरपूर होते हैं तथा रंग–बिरंगे रसीले फलों में मौजूद एन्टीऑक्सीडेन्ट पदार्थ शरीर में कैंसर जैसी भयानक बीमारी की रोकथाम में सहायक होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की अनुशंसा के अनुसार हर व्यक्ति को कम से कम 90–110 ग्राम फलों का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए वर्तमान में भारत में 172 ग्राम व राजस्थान में 25 ग्राम फल उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है। विकसित देशों से तुलना करें तो स्थिति और भी बदतर दिखाई देती है क्योंकि स्विट्जरलैण्ड एवं अमेरिका में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति फल उपभोग क्रमशः 419 एवं 223 ग्राम है।

आज तक की उपलब्धियाँ संतोषजनक तो हैं परन्तु अभी भी इस क्षेत्र में देश को बहुत आगे जाने की जरूरत है। अनुमान है कि सन् 2025 में देश की आबादी लगभग 135 करोड़ होगी जिसके लिए 95 मिलियन टन फलों की जरूरत पड़ेगी जिसके लिए आज "सुनहरी क्रान्ति" (Golden Revolution) के क्रियान्वयन की जरूरत है। उद्यानिकी फसलें परम्परागत फसलों की तुलना में अधिक आमदनी, पोषणता व आजीविका सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम हैं।

(2) औषधीय महत्व (Medicinal Importance) : प्राचीनकाल से ही विभिन्न फलों का औषधीय रूप से उपयोग कई वर्षों से किया जाता रहा है जैसे स्वास्थ्यवर्धक च्यवनप्राश बनाने में आँवलों का उपयोग तथा त्रिफला चूर्ण बनाने में हरड़ (*Termenalia Chebula* Retz.), बहेड़ा (*Termenalia bellirica* (Gaertn.) Roxb.) व आँवला (*Emblica officinalis* L.) का उपयोग किया जाता है। विभिन्न रोगियों को मौसम्बी का रस व नारियल पानी पिलाना हितकर रहा है। विभिन्न फलों में विटामिन्स व एन्टीऑक्सीडेन्टस भरपूर होते हैं जो हमारे शरीर को रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं।

फलदार वृक्षों एवं फसलों से आय का तुलनात्मक अध्ययन

फल / फसल	उत्पादन (टन / हे.)	मूल्य (रु. / टन)	सकल आय (रु.)
गेहूँ	4.00	16,000	64,000
आम	8.43	10,000	84,300
केला	30.24	4,000	1,20,960
पपीता	21.83	5,000	1,09,150
अंगूर	16,95	12,000	2,03,400

(3) आर्थिक महत्त्व (Economic Importance) :

आय का स्रोत : खाद्यान्नों की तुलना में फलों की खेती से प्रति हेक्टेयर आय अधिक प्राप्त होती है तथा प्रति इकाई क्षेत्रफल में एक वर्ष में अधिक रोजगार दिवसों का सृजन होता है।

विभिन्न ताजे फलों व उनके उत्पादों से विदेशी मुद्रा का अर्जन होता है। फलों की विश्व निर्यात बाजार में हमारे देश की भागीदारी 0.3 प्रतिशत है। हमारे देश से होने वाले कुल बागवानी के निर्यात में ताजे फलों का योगदान 11 प्रतिशत है, जिसमें से 60 प्रतिशत योगदान आम एवं अंगूर का है। राजस्थान की हिस्सेदारी राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रफल व उत्पादन में लगभग 1 प्रतिशत मात्र है।

रोजगार सृजन : उद्यानिकी फसलें खाद्यान्न फसलों की तुलना में 4–6 गुणा अधिक मानव दिवस प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है तथा ये फसलें रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करने व गाँव से शहर की ओर पलायन को कम करने में सहायक हैं।

क्र.सं.	कृषि व्यवसाय	मानव दिवस (प्रति हेक्टेयर)
1.	खाद्यान फसलें	143
2.	फल फसलें	860
3.	सब्जी फसलें	912
4	पुष्प व औषध फसलें	547

(4) औद्योगिक महत्त्व (Industrial Importance) : विभिन्न प्रकार के उद्योगों जैसे फल परिरक्षण, मधुमक्खी (मौन)

पालन, पपेन उत्पादन (पपीता), रेशा उद्योग (केला, बास), मदिरा उद्योग (अंगूर, सेब, काजू, अनन्नास), नर्सरी माध्यम–कोकोपीट उद्योग (नारियल) आदि का विकास फलोत्पादन पर निर्भर करता है तथा उनके कच्चे माल का स्रोत भी फल फसले हैं।

(5) धार्मिक महत्व (Religious Importance) :

फल प्राचीन काल से संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं तथा हर अच्छे व शुभ कार्य की शुरूआत में फलों की आवश्यकता होती है जैसे नारियल। सावन माह में भगवान शिव की पूजा बेल पत्र से करने का विशेष महत्व है तथा विवाह जैसे शुभ कार्यों में मण्डप केले के पत्तों से तथा आम के पत्तों की वन्दनवार से सजाना तथा हवन आदि मांगलिक कार्यों में आम की लकड़िया आदि सभी धार्मिक महत्व का परिचायक है।

(6) पर्यावरण से सम्बन्धित महत्व (Environmental Importance) : पर्यावरण प्रदूषण व मृदा क्षरण को सुधारने में भी फल वृक्षों का काफी योगदान हैं। अन्य वृक्षों की तरह फल वृक्ष भी आक्सीजन दाता है जो पर्यावरण में प्रदूषण स्तर को कम करते है तथा तेज हवा व जल बहाव वाले क्षेत्रों में हवा व जल की गति को नियंत्रित कर क्षरण की समस्या को कम करने में फलदार वृक्ष सक्षम है जैसे काजू का प्रादुर्भाव भारत में समुद्र के किनारे मृदा क्षरण को रोकने के उद्देश्य से किया गया था।

फलोत्पादन की वर्तमान स्थिति

उद्यानिकी फसलों में लगभग 90 प्रतिशत हिस्सेदारी फल व सब्जी फसलों की है। भारत विश्व में इन फसलों के उत्पादन का दूसरा बड़ा राष्ट्र है। साथ ही कुछ फसलों जैसे आम, केला, पपीता, काजू, सुपारी, आलू व भिण्डी आदि में प्रथम स्थान रखता है।

वर्तमान में देश के कुल कृषि के सकल घरेलू उत्पाद में उद्यानिकी फसलों की हिस्सेदारी 30 प्रतिशत से अधिक है, जो कुल फसल क्षेत्रफल के मात्र 13.8 प्रतिशत भू–भाग से ली जा रही है। सभी उद्यानिकी फसलों (फल, सब्जी, पुष्प, सुगंधीय, मसाले, रोपण, औषधीय, मशरूम व शहद) का उत्पादन 2998 लाख टन है जो खाद्यान फसलों से अधिक हो रहा है। (वर्ष 2016–17 के तृतीय अनुमान के अनुसार)। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के वर्ष 2016–17 के तृतीय अनुमान के अनुसार 937.1 लाख टन फलों का उत्पादन 64.6 लाख हैक्टेयर क्षेत्र से हुआ है।

विगत दशक में देखा गया कि उद्यानिकी फसलों की घरेलू खपत में बढ़ोत्तरी 2.3 प्रतिशत दर से हो रही है वहीं खाद्यान्न फसलों की खपत 1.3 प्रतिशत दर से घट रही है। उद्यानिकी फसलों का क्षेत्र 2.7 प्रतिशत वार्षिक दर से तथा उत्पादन 7 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ा है, वहीं इन फसलों में सर्वाधिक वृद्धि दर की बात करें तो फल फसलों में 9.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर देखी गई।

फलोत्पादन में अग्रणी राज्य क्षेत्रफल के अनुसार महाराष्ट्र व उत्पादन में उत्तरप्रदेश अग्रणी रहे, तथा फलवार सर्वाधिक क्षेत्रफल आम के अन्तर्गत तथा उत्पादन में केला है।

राजस्थान में उद्यानिकी फसलों के अन्तर्गत कुल फसल क्षेत्रफल का 3.8 भाग आता है। राजस्थान के उद्यान विभाग में वर्ष 2016–17 में सभी उद्यानिकी फसलों (फल, सब्जी, पुष्प, औषध–सुगन्धीय व बीजीय मसालें जैसें धनीया, जीरा, सौंफ, अजवायन आदि) को 16.29 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से 46.84 लाख टन उत्पादन लिया जा रहा है। फल उत्पादन वर्ष 2016–17 में फलोत्पादन 53092 हेक्टेयर भूमि में उत्पादन 961597 टन रहा।

जिला झालावाड़ फलोत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्रफल व उत्पादन में अग्रणी है।

भारत में उगायें जाने वाले फलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता वर्ष 2016–17 के तृतीय अनुमान के आधार पर निम्न हैः–

क्र.सं.	फल फसल	क्षेत्रफल (लाख हे.)	उत्पादन (लाख टन)	उत्पादकता (टन प्रति हे.)
1.	आम	22.67	202.95	8.95
2.	केला	8.52	302.75	35.53
3.	अमरूद	2.60	36.15	13.90
4.	नींबू वर्गीय फल	10.37	120.53	11.62
5.	अनार	1.14	19.69	17.27
6.	आँवला	0.91	10.25	11.26
7.	पपीता	1.38	61.45	44.52
8.	अंगूर	1.36	27.84	20.47
9.	अनन्नास	1.14	19.69	17.27
10.	सेव	2.78	22.58	8.12
11.	बेर	0.50	5.26	10.52
	कुल	64.6	937.1	14.51

विभिन्न फलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल व उत्पादन निम्न हैः–

क्र.सं.	फल फसल	क्षेत्रफल (हजार हे.)	उत्पादन (हजार टन)	उत्पादकता (टन/हे.)
1.	आम	5.16	54.79	10.62
2	अमरूद	4 17	27 17	6 51
3.	नींबू	2.95	16.66	5.64
4.	अनार	2.86	10.38	3.63
5.	आँवला	1.60	13.75	8.59
6.	संतरा	23.35	496.95	21.28
7.	किन्नो	9.55	204.26	21.39
8.	पपीता	0.74	8.71	11.77
9.	बेर	0.70	4.70	6.71
10.	सीताफल	0.55	4.28	7.78
	कुल	53.09	961.60	18.11

फलोत्पादन का भविष्य :–

भारत वर्ष में जलवायु विविधता का लाभ यह है कि हम सभी प्रकार के फलों की खेती आसानी से कर सकते हैं पर प्रति ईकाई उत्पादकता का स्तर विश्व स्तर से कम है जैसे नींबू वर्गीय फलों की भारत में औसत उत्पादकता 8–10 टन प्रति हेक्टेयर है जबकि स्पेन, इटली आदि देशों में 17–30 टन प्रति हेक्टेयर है वहीं अनन्नास की औसत उत्पादकता 15–20 टन जबकि हवाई द्वीप व फिलीपीन्स में 60–70 टन तक प्राप्त करते है अतः आने वाले वर्षो में विभिन्न फलों की प्रति ईकाई उत्पादकता तथा गुणवत्ता बढ़ाने की आवश्यकता हैं।

भविष्य में कृषि जोत का आकार छोटा होते रहने से वर्तमान स्वरूप को बदलकर सघन बागवानी लगभग सभी फल फसलों में अपनाने की आवश्यकता है अतः इस हेतु उद्यानिकी क्रियाओं के मानकीकरण पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

खेती अब व्यवसाय का रूप लेती जा रही है अतः फसल तंत्र में अधिक आय देने वाली उद्यानिकी फसलों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में भारत का प्रसंस्करण स्तर 1.0 प्रतिशत है जिसकी 2025 तक 2.5 प्रतिशत तक बढ़ने की संभावना है।

फल उत्पादन व निर्यात के महत्व को देखते हुए इस दिशा में सरकार भी विभिन्न मिशन मोड प्रोजेक्ट इनके प्रोत्साहन हेतु लेकर आ रही है जैसे 2005 में राष्ट्रीय हार्टीकल्चर मिशन (NHM), 2006 में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) व राष्ट्रीय कृषि नवोन्वेषी परियोजना (NAIP), 2016 में समन्वित बागवानी विकास मिशन (MIDH) आदि।

राजस्थान प्रदेश में आर्द्र, उपोष्ण तथा शुष्क तरह की जलवायु है, जिसमें मुख्यतः संतरा, नींबू, किन्नो, सीताफल, अमरूद, आम, अनार, बेर, आँवला आदि के विकास की प्रबल सम्भावना है। क्षेत्रवार, बॉसवाड़ा, उदयपुर व डूंगरपुर जिलों में आम, हाड़ोती (कोटा, झालावाड़) में संतरा, सवाई माधोपुर व बूँदी में अमरूद, चितौड़ व राजसमंद में सीताफल, बीकानेर व जोधपुर में बेर, गंगानगर व हनुमानगढ़ में किन्नो तथा जैसलमेर में खजूर का सघन क्षेत्र बनाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. आम उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। विश्व के कुल आम उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत भाग भारत वर्ष में पैदा होता है।
2. केले के फलों में कार्बोहाइड्रेट (27%) एवं विटामिन बी–1 प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। विश्व में भारत सबसे बड़ा केला उत्पादक राष्ट्र है।
3. भारत में अमरूद का क्षेत्रफल व उत्पादन आम, केला, नींबू वर्गीय फलों के बाद चौथे स्थान पर आता है। इसकी खेती मुख्य रूप से भारत, ब्राजील, मैक्सिको, थाईलैण्ड, अमेरिका, न्यूजीलैण्ड, फिलीपीन्स, चीन, इण्डोनेशिया, वेनेजुएला एवं आस्ट्रेलिया में की जाती है।
4. बेर की पत्तियों में 5.6 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन और 49.7 प्रतिशत कुल पाच्य पोषक तत्व पाया जाता है।
5. अंगूर की उत्पादकता में भारतवर्ष का विश्व में प्रथम स्थान है। भारतवर्ष में उगायी जाने वाली अधिकतर जातियाँ ताजा फलों के रूप में प्रयोग में ली जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. भारत में सर्वाधिक मात्रा में कौनसा फल पैदा किया जाता है?
   (अ) आम (ब) चीकू
   (स) केला (द) अनार
2. राजस्थान का कौनसा जिला छोटा नागपुर कहलाता है?
   (अ) कोटा (ब) भीलवाड़ा
   (स) सवाई माधोपुर (द) झालावाड़
3. फलों को सुरक्षा प्रदान करने वाले खाद्य क्यों कहते है?
   (अ) विटामिन्स व एन्टीऑक्सीडेन्टस से भरपूर होते हैं।
   (ब) इसमें अधिक आय किसान प्राप्त कर सकता है।
   (स) ये स्वास्थ्यवर्धक व भूमि के क्षरण को रोकते हैं।
   (द) उपरोक्त सभी
4. फल उत्पादन को बढ़ावा देने वाली कौनसी क्रांन्ति सम्बन्धित है?
   (अ) हरित क्रांन्ति (Green)
   (ब) सुनहरी क्रांन्ति (Golden)
   (स) गोल क्रांन्ति (Round)
   (द) इन्द्रधनुषी क्रांन्ति (Rainbow)
5. सावन माह में भगवान शिव की पूर्जा–अर्चना में कौनसे फल वृक्ष का महत्व है?
   (अ) बेल पत्र (ब) आम
   (स) केला (द) उपर्युक्त सभी
6. गंगानगर व हनुमानगढ़ जिले कौनसे फल का उत्पादन प्रमुखता से करते है?
   (अ) आँवला (ब) किन्नो
   (स) अनार (द) खजूर

अतिलघूत्तरात्मक :

1. अकबर ने एक लाख आम के पौधे कहाँ लगवाये थे?
2. त्रिफला के प्रमुख घटक लिखो।
3. रेशा उद्योग में कौनसे फलदार वृक्ष उपयोग में आते हैं?
4. उत्पादकता की दृष्टि से कौनसा फल अग्रणी है?
5. कोकोपीट नर्सरी में प्रयुक्त माध्यम किस फसल का उप–उत्पाद है?
6. MIDH का पूरा नाम बताइये।
7. सीताफल उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान के प्रमुख जिले कौन–कौन से हैं।
8. वर्तमान में भारत में प्रतिव्यक्ति फल उपलब्धता बताइये।
9. वर्तमान में फल उत्पादन बताइये।
10. भारत में कौनसे फल की उत्पादकता सर्वाधिक है?

लघूत्तरात्मक :

1. उद्यानिकी में सरकार का योगदान लिखो।
2. राजस्थान के आम, अमरूद व आँवला उत्पादन में अग्रणी जिलों के नाम बताइये।
3. उत्पादकता की दृष्टि से कौनसा फल अग्रणी है?
4. विटामिन ए व सी के मुख्य फल स्रोत बताइये।

निबन्धात्मक :

1. फलोत्पादन का भविष्य भारत व राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में बताइये।
2. फलोत्पादन के महत्त्व का विस्तृत वर्णन करो।

उत्तरमाला

1 (स) 2 (द) 3 (अ) 4 (ब) 5 (अ) 6 (ब)

अध्याय – 8
प्रवर्द्धन (Propagation)

पौधों की संख्या में सतत् बढोत्तरी (Multiplication & perpetuation) करने की क्रिया को पादप प्रसारण या प्रवर्द्धन कहते हैं, इसे बीज (लैंगिक प्रसारण), वानस्पतिक (अलैंगिक प्रसारण) व उत्तक संवर्द्धन (Tissue culture) तरीकों द्वारा किया जाता है।

बीज द्वारा प्रसारण (Seed propagation)

बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे बीजू पौधे (seedling) कहलाते हैं। इसके द्वारा प्रसारण के कई लाभ हैं–

1. कम खर्च व आसानी से पौधे तैयार होते हैं।
2. बीजू पौधे विभिन्न जैविक व अजैविक तनाव को सहन करने में ज्यादा सक्षम होते हैं।
3. प्रसारण की सरल विधि है तथा पौधे दीर्घ आयु वाले होते हैं।
4. प्रजनन कार्य या किस्म सुधार बीज द्वारा ही किया जाता है।
5. कुछ फलदार वृक्षों में बहुभ्रूणता (नींबू, जामुन) के कारण बीजू पौधे मातृ वृक्ष के समान गुणों वाले होते हैं तथा कुछ पौधों में वानस्पतिक प्रसारण नहीं होता या आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते जैसे पपीता, फालसा, मैंगोस्टीन आदि।

बीज द्वारा प्रसारण से हानियाँ

1. इन पौधों में मातृ वृक्ष के समान गुण नहीं होते अर्थात् True to type नहीं होते।
2. बीजू पौधे लम्बी अवधि के बाद फलन में आते हैं।
3. पौधों की लम्बाई आकार अधिक होने से प्रबंधन व्यय अधिक होता है।
4. कुछ फलदार वृक्षों में बीज नहीं बनते कैसे केला, अनन्नास, अंगूर, शहतूत आदि अतः इन्हें बीज द्वारा उगाना असंभव है।

बीज द्वारा प्रसारण

वानस्पतिक प्रसारण (Vegetative propagation) :

इस विधि में बिना बीज की सहायता से पौधे के विभिन्न कायिक भागों जैसे तना, जड़, पत्ती व इनके रूपान्तरित भागों से नये पौधे तैयार किये जाते हैं। इस विधि के निम्न लाभ हैं:–

1. इसमें पौधे मातृ पौधे के समान गुणों वाले (true to type) होते हैं।
2. फलन में जल्दी आते हैं (Precocious)।
3. बीज रहित पौधों का प्रसारण किया जा सकता है।
4. इस विधि द्वारा निम्न श्रेणी के पौधों को उच्च श्रेणी में परिवर्तित किया जा सकता है (Top working)।
5. इन पौधों का आकार कम होने से अधिक सघनता (High density) तथा प्रबंधन उपाय आसानी से कर सकते हैं।

हानियाँ:–

1. ये पौधे बीजू पौधों की तुलना में कम आयु के होते हैं।
2. प्रजनन (Breeding) द्वारा फसल व किस्म सुधार सम्भव नहीं हैं।
3. जैविक (Biotic) व अजैविक (abiotic) तनावों (stresses) को सहन करने में बीजू पौधों की तुलना में कम सक्षम होते हैं।

वानस्पतिक प्रसारण के प्रकार

1. कलम द्वारा (Cutting) :

इस विधि में पौधे के भाग जैसे जड़, तना या पत्ती को पौधे से अलग करके उपयुक्त माध्यम (Media) में लगा दिया जाता है जिससे वह नये पौधे को जन्म दे सकें।

जड़ कलम (Root cutting) : सेव, आड़ू, लीची, अमरूद आदि पौधों के प्रवर्द्धन के लिए 0.5–1.0 सेमी. मोटाई युक्त तथा 10–15 सेमी. लम्बी मूल जड़ों से कलम तैयार की जाती है जिन्हें भूमि के समानान्तर दबा दिया जाता है जिनमें फुटान निकलते ही नया पौधा तैयार हो जाता है।

पर्ण (पत्ती) कलम (Leaf cutting) : जिन पौधों की मोटी व मांसल गूदेदार पत्तियाँ होती हैं उनमें इस विधि से प्रवर्द्धन किया जाता है। इन पौधों की पत्तियों के किनारों में अपस्थानिक कलिकायें उपस्थित रहती हैं जो भूमि के सम्पर्क में आने से, नमी

युक्त माध्यम में अंकुरण हो कर नये पौधे को जन्म देती हैं। इन अंकुरित कलिओं को पत्तीभ्रूण (Leaf embryo) कहा जाता है। उदाहरणः ब्रायोफाइलम तथा बिगनोनिया आदि।

तना कलम (Stem cutting) : किसी पौधे के तने व शाखाओं से जो कर्तनें तैयार करके लगायी जाती हैं वह तना कलम कहलाती हैं। शाखा की लकड़ी के कठोरपन या परिपक्वता के आधार पर इन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता हैः–

(अ) कठोर काष्ठीय कलम (Hard wood cutting): लगभग एक वर्ष पुरानी पूर्ण परिपक्व शाखा, जिसमें भोज्य पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट) अधिक तथा रंग भूरा व मोटाई लगभग 2.0 सेमी. की होती है। चयनित कलम की लम्बाई 15–25 सेमी. (औसतन 22.5 सेमी.) तथा पत्ती विहीन तैयार करके नर्सरी में भूमि के लम्बवत् (45 डिग्री कोण पर) लगभग दो तिहाई भूमि के अन्दर में लगा दिया जाता है। इन कलमों में पहले पत्तियाँ तथा बाद में जड़ें निकलकर लगभग 60–70 दिन में पौधा तैयार हो जाता है। उदाहरण– अंगूर

(ब) मध्यम कठोर काष्ठीय कलम (Semi hard wood cutting) : ये कलमें 6–9 माह पुरानी पिछले मौसम की वृद्धि वाली शाखा से तैयार करते हैं तथा पत्ती विहीन रखते हैं। इसकी लम्बाई भी कठोर काष्ठ कलम के समान ही रखते हैं। अनार, अंजीर, लैमन, नाशपाती आदि।

(स) मुलायम या कोमल काष्ठ कलम (Soft wood cutting) : ये कलमें इसी मौसम की वृद्धि की लगभग 6 माह पुरानी शाखा जिसकी लम्बाई 5–10 सेमी. रखकर तैयार करते हैं। चयनित शाखा हरे रंग की होती है। उदाहरणः– कोलिएस, चमेली आदि।

(द) शाकीय कलम (Herbaceous cutting) : नयी वृद्धि वाली प्ररोह जिसका रंग हरा पत्तियाँ अधिक होती है लम्बाई 7–15 सेमी पत्तियों युक्त कलम होती हैं तथा इन्हें उचित माध्यम में ही लगाया जाता है क्योंकि काष्ठ उत्तकों का निर्माण नहीं होता। उदाहरणः– कारनेशन, गुलदाउदी, कोलिएस आदि।

कठोर काष्ठीय | मध्यम कठोर काष्ठीय | शाकीय कलम | मुलायम या कोमल काष्ठ | पर्ण (पत्ती)

2. दाब कलम (Layering) :

मातृ पौधे की किसी शाखा या टहनी को बिना उससे पृथक किये उसमें कृत्रिम रूप से जड़ उत्पन्न कराने की क्रिया को दाब कलम कहा जाता है।

(अ) साधारण दाब (Simple layering) : इस प्रवर्द्धन विधि में 9 से 12 माह पुरानी शाखा के एक स्थान से 2.5 सेमी. चौड़ाई में छाल निकाल दी जाती हैं तथा लगभग 15 सेमी. सिरा भूमि से ऊपर रखकर शाखा को भूमि में दबा देते हैं। लगभग डेढ़ माह बाद जड़े निकालने पर इस शाखा को मातृ पौधें से अलग कर स्वतन्त्र पौधा तैयार हो जाता है।

(ब) शीर्ष दाब (Tip layering) : ब्लैक बेरी, चमेली, रास्पबेरी आदि पौधों में मुलायम शाखों के शीर्ष भाग को मोड़कर उसको 2.5 सेमी. चौड़ाई की छाल हटाकर जमीन में साधारण दाब की तरह दबा देते हैं।

(स) सर्पाकार दाब (Compound or serpentine Layering) : कभी–कभी पौधों की लम्बी शाखाओं को साधारण दाब की तरह दो या तीन स्थानों पर 2.5 सेमी. चौड़ाई में छाल निकाल कर उन स्थानों को भूमि में दबा दिया जाता है। नियमित देखभाल से इन स्थानों पर जड़ें निकलने पर इन्हे अलग अलग काटकर भूमि में लगा दिया जाता है। इस विधि द्वारा एक ही

शाखा से अधिक पौधे तैयार किये जा सकते हैं। उदाहरण स्ट्राबेरी, मोगरा, चमेली आदि।

(द) ट्रेन्च दाब (Trench layering) : इस विधि में समूची शाखा या वृक्ष को नाली बनाकर दबा दिया जाता है तथा टहनी (शाखाओं) के हर गाँठ से जड़ व प्ररोह निकलता है जिससे नये पौधों का निर्माण होता है। यह विधि पुराने वृक्षों से पौधे तैयार करने में भी उपयोग लेते हैं। उदाहरण– सेब, नाशपाती, आड़ू आदि।

(य) माउण्ड या स्टूल दाब (Mound or stool layering) : इसमें पौधों को उसके सुषुप्तकाल में भूमि के पास से काट दिया जाता है। ऐसा करने से उसके तने से छोटी–छोटी अनेक शाखाएँ निकलती है। जब शाखाएँ 8–10 सेमी. की हो जावे तो उनकी जमीन के पास से 2–2.5 सेमी. आकार की छाल निकालकर उन पर थोड़ी–थोड़ी मिट्टी चढ़ाते है, ऐसा तैयार किया जाता है। छाल हटे भाग को मध्य में रखकर, उस पर गीली मॉस घास (Sphagnum moss) को अल्काथीन के टुकड़े के साथ लपेट कर बाँध देते हैं। कुछ समय बाद जड़े निकल आने पर उसे काट कर भूमि में लगा दिया जाता है।

3. उपरोपण (Grafting) :

प्रवर्द्धन की इस विधि में पौधा साधारणतया दो भागों से मिलकर बनता हैं। एक मूलवृन्त (Rootstock) जो बीजू तथा निम्न श्रेणी का होता है तथा इसके ऊपर जोड़े जाने वाला दूसरा भाग उच्च श्रेणी का मातृ या पैतृक गुणों का सांकुर (Scion) होता है। ऐसी सभी विधियाँ जिसमें मूलवृन्त व सांकुर डाली (Scion) जोड़कर नया पौधा तैयार किया जाता है। उपरोपण या ग्राफ्टिंग

ट्रेन्च दाब

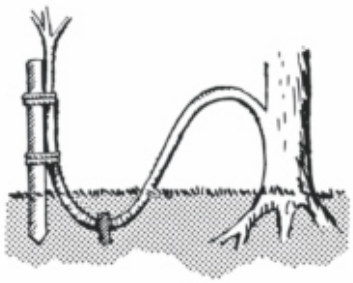

साधारण दाब

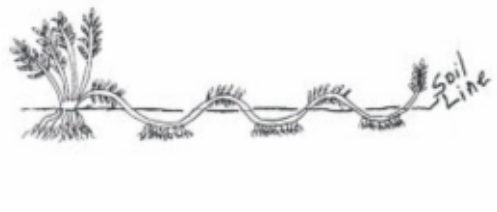

सर्पाकार दाब

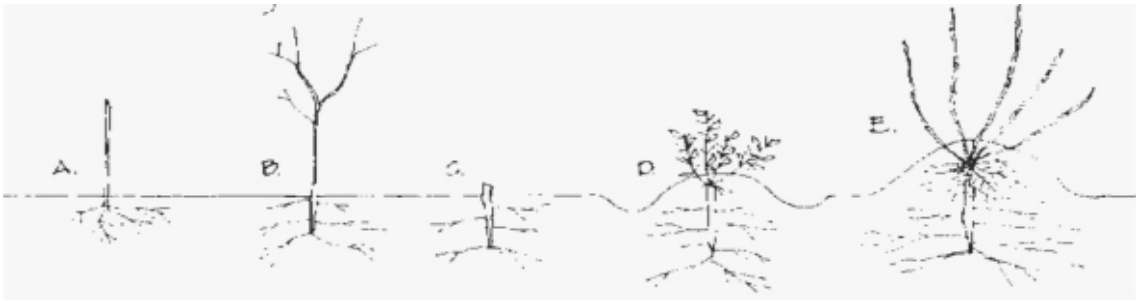

माउण्ड या स्टूल दाब

माउण्ड या स्टूल दाब

गूट्टी या वायु दाब

कहा जाता है। यहाँ सांकुर एक कली (Bud) के रूप में प्रयोग करने पर कलिकायन (Budding) कहलाता है।

ग्राफ्टिंग दो प्रकार की होती है–

1. अटैच्ड या भेंट कलम (Inarching) – जिसमें मूलवृन्त को पैतृक या मातृ वृक्ष की शाख (Scion) के पास ले जाते हैं तथा सांकुर शाख को मातृ या पैतृक वृक्ष से अलग नहीं करते जब तक कि रोपण ठीक से सम्पन्न नहीं हो जाता है। उदाहरण– आम, अमरूद, चीकू आदि।

2. डिटैच्ड ग्राफ्टिंग– इसमें मातृ या पैतृक पौधे की सांकुर शाख को नर्सरी में तैयार मूलवृन्त पर रोपण किया जाता है। इस विधि का विवरण निम्नानुसार है–

1. साधारण ग्राफ्टिंग (Simple grafting)– इसे स्पलिस ग्राफ्टिंग भी कहते जहाँ समान मोटाई के मूलवृन्त व सांकुर को विपरीत दिशा में 2.5–4.0 सेमी. लम्बाई से ढलानदार कटाव बनाते हैं तथा रोपण पट्टिका से बाँध देते हैं।

2. जीभी ग्राफ्टिंग (Tongue grafting)– यह विधि साधारण ग्राफ्टिंग की तरह ही है। इस विधि में साधारण ग्राफ्टिंग के लिए कटान तैयार करने के बाद मूलवृन्त में ऊपर से नीचे की ओर तथा सांकुरडाली में नीचे से ऊपर को जिव्हा आकार का कटान बनाकर दोनों को आपस में फंसा कर बाँध दिया जाता है।

3. वीनियर ग्राफ्टिंग – विस्तृत विधि आम में पढ़े।

4. वैज या क्लैफ्ट ग्राफ्टिंग (Wedge or cleft) – इस विधि में मूलवृन्त को भूमि से 22.5 सेमी. ऊपर से काट देते है। शीर्ष के स्थान पर अंग्रेजी के शब्द 'वी' आकार का लगभग 4–5 सेमी. गहरा कटान बनाते हैं। सांकुर डाली के निकटस्थ सिरे पर मूलवृन्त के 'वी' आकार में लगाने योग्य फाना (वैज) बनाकर, मूलवृन्त के कटान में फंसाकर अच्छी प्रकार से बांध दिया जाता है। करने से शाखाओं से जड़े निकल कर पौधा तैयार हो जाता है। उस समय इनको पौधे के समीप से काटकर स्वतंत्र पौधे के रूप में रोपण कर देते हैं इस विधि को स्टूलिंग भी कहते है। उदाहरण– सेब, अमरूद, लीची आदि।

(र) गूट्टी या वायु दाब (Air Layering) : फलवृक्षों जैसे नींबू, लीची, अनार, अमरूद आदि के प्रवर्धन हेतु दाब की यह विधि सर्वाधिक उपयोग में ली जाती है। ऐसी शाखायें जो भूमि से अधिक ऊँचाई पर होती है उन पर यह विधि अपनायी जाती है। इस विधि को मारकोटेज, चायनीज लेयरिंग भी कहते हैं। इस विधि में चयन की गई शाखा को साधारण दाब की तरह

5. स्टोन या एपिकोटाइल ग्राफ्टिंग (Stone or epicotyl grafting)– विस्तृत विधि आम से पढ़ें।

6. मृदु काष्ठ ग्राफ्टिंग (Soft wood grafting)– सीताफल, कटहल, आम, काजू, चीकू आदि फसलों के प्रवर्द्धन में उपयोगी है। मूलवृन्त 10–12 सेमी. ऊँचाई पर लगभग 5 सेमी. का ढलानदार कट लगाते हैं तथा सांकुर पर समान लम्बाई का वैज आकार के कटान लगाकर दोनों को रोपण पट्टिका से बांध देते हैं। अब इस पर जुड़ाव भाग (Union) के नीचे आने वाले फुटान समय–समय पर हटाते रहें। इन सीटू (In situ) तरीके से लगाये गये पौधों में भी यह प्रभावी विधि हैं।

7. सेतू उपरोपण (Bridge grafting)– सेतू उपरोपण ऐसे वृक्षों में करते हैं जिनमें मूलतंत्र और ऊपरी भाग स्वस्थ है। परन्तु कॉलर के पास का कुछ भाग क्षतिग्रस्त हो गया है। यह फरवरी मार्च में नयी वृद्धि प्रारम्भ होने से पहले की जाती है। एक वर्ष पुरानी शाखा की सांकुर के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें स्थान की लम्बाई के अनुसार सांकुर डाली काटकर दोनों सिरों को नुकीला बनाते हुए धनुषाकार में प्रत्यारोपित किया जाता है, यहाँ ध्रुवता (Polarity) का विशेष ध्यान रखा जाता है। अतः इस विधि द्वारा ट्रेक्टर हल या नाशी जीवों से नुकसान हुए (जमीनतल के पास से) घायल वृक्षों को सामान्य बनाया जाता है। उदाहरण– सेब, नाशपती, चेरी, अखरोट आदि।

8. दोहरी कलम बाँधना या उपरोण (Double grafting)– जब मूलवृंत और सांकुर के बीच मध्यस्थ (Inter mediate root stock) का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रथम मिलान मूलवृंत और मध्यस्थ मूलवृंत व दूसरा मध्यस्थ मूलवृंत और सांकुर के बीच होता है। इस उपरोपण का उपयोग विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ही करते हैं। जैसे– मुख्य पौधे की वृद्धि नियंत्रण, सांकुर में जैविक व अजैविक तनावों को सहन की क्षमता बढ़ाने व सांकुर व मूलवृंत के मध्य अनुकूलता बैठाना आदि।

अटैच्ड ग्राफ्टिंग

भेंट कलम ग्राफ्टिंग

डिटैच्ड ग्राफ्टिंग

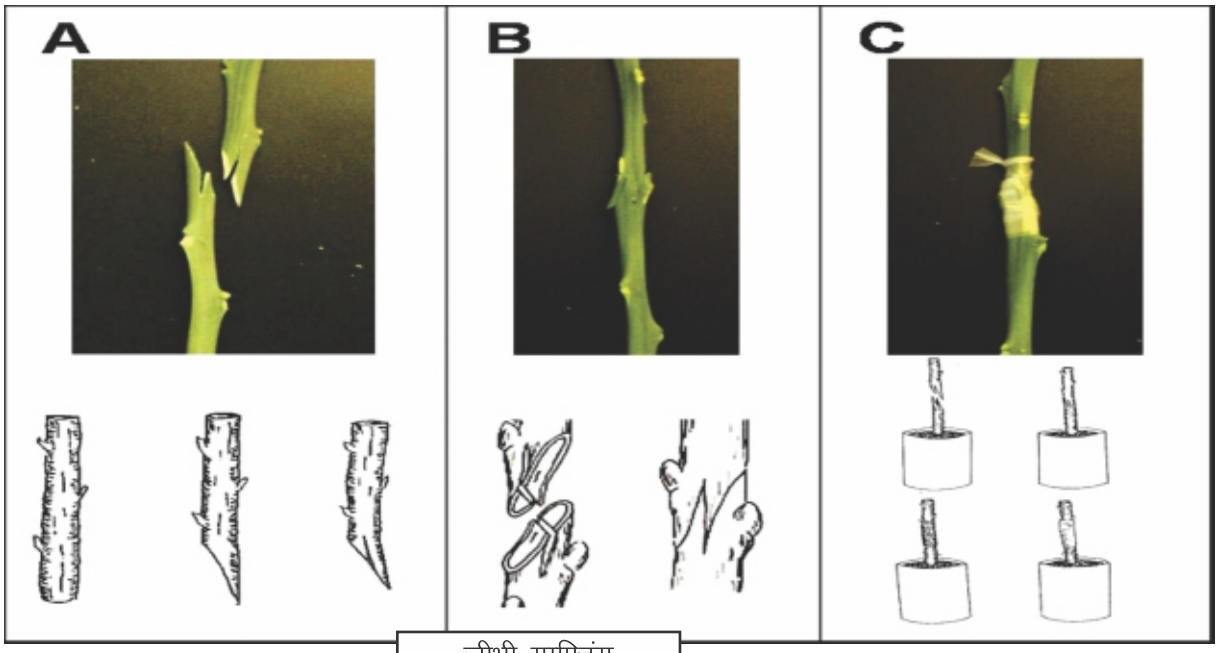

जीभी ग्राफ्टिंग

वीनियर ग्राफ्टिंग

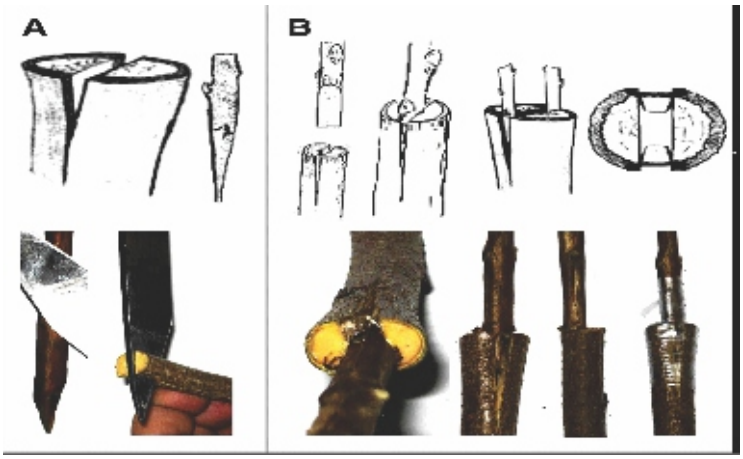

वैज या क्लैफ्ट ग्राफ्टिंग

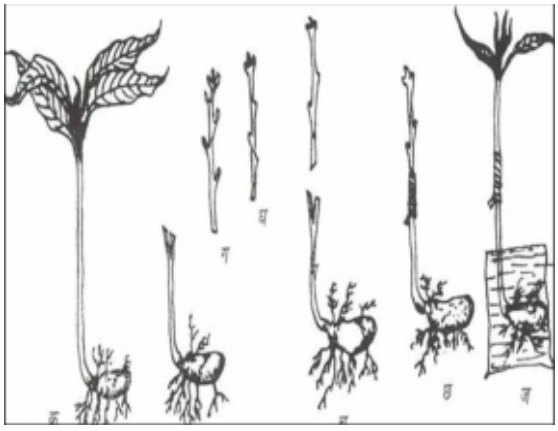

स्टोन या एपिकोटाइल ग्राफ्टिंग

मृदु काष्ठ ग्राफ्टिंग

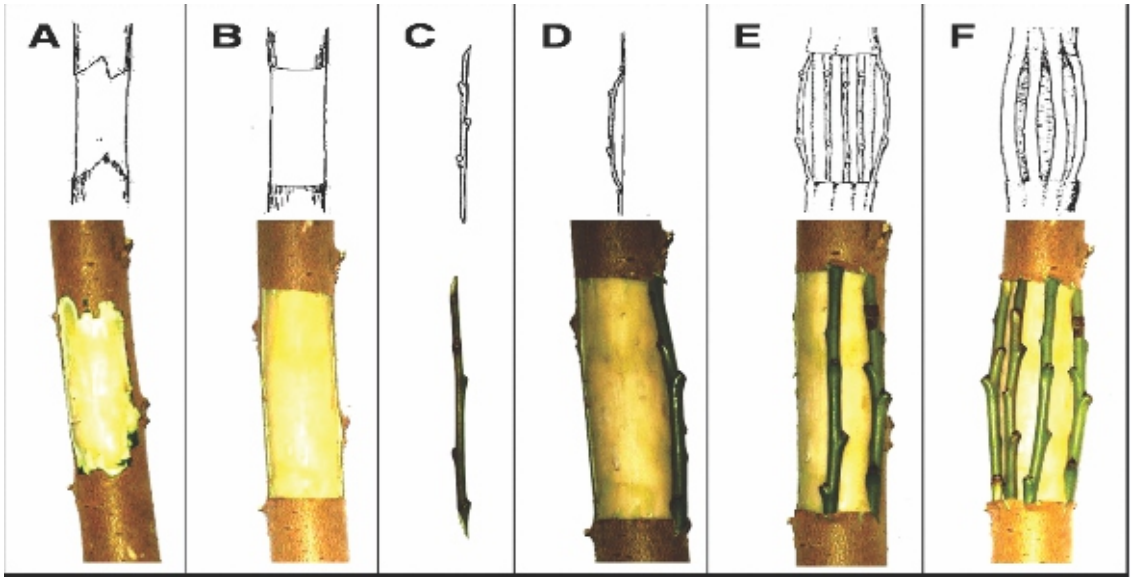

सेतू उपरोपण

4. कलिकायन (Budding)– कलिकायन या चश्मा चढाने की निम्न विधियाँ प्रमुख है–

(1) टी या शील्ड कलिकायन (T या Shield budding) – मूलवृन्त पर अंग्रेजी के टी आकार का 2.5–3.5 सेमी लम्बा कटान लगाते हैं तथा इतना ही एक समानान्तर कट देकर छाल को ढीला किया जाता है अब शील्ड आकार की छाल जिस पर कलिका (उन्नत किस्में) हो सांकुर के रूप में लेकर इसे टी आकार में प्रविष्ट करके पॉलीथीन स्ट्रीप से अच्छी तरह बांध देते हैं तथा बाँधते समय ध्यान रखें की कलिका कक्ष (Axil) खुला रहे, यही नये प्ररोह के रूप में आगे विकसित होगा। इसी तरह मूलवृंत पर कटाव केवल लम्बवत् हो तो आई कलिकायन, एक लम्बवत् कट के दोनों सिरों पर समानान्तर कटान करें तो एच कलिकायन तथा उल्टा शील्ड कलिकायन हो तो उल्टा टी कलिकायन (Inverted T budding) कहते हैं। इन विधियों द्वारा बेर, मौसम्बी, किन्नो, हाइब्रिड गुलाब, आलूबूखारा, आडू आदि का प्रवर्द्धन किया जाता है।

2. पैबन्द कलिकायन (Patch budding)– पैच बडिंग में मूलवृन्त पर भूमि से 20–25 सेमी. ऊँचाई पर 2.5–3 सेमी. लम्बी आयताकार आकृति में छाल काट कर अलग कर दी जाती है। अब इसी आकार की कलिका छाल सहित निकालकर मूलवृन्त पर तैयार कटान पर लगा कर बांध दिया जाता है। यह विधि आँवला, अखरोट में अपनाई जाती है।

जब मूलवृन्त पर तीन तरफ कटान लगाकर छाल फ्लेप (Bark flap) को उठा लिया जाता है तथा सांकुर शाखा से कलिका युक्त छाल (आकार में मूलवृन्त के कटान से थोड़ी छोटी) इस फ्लेप में बाँध देते हैं इसे फॉरकर्ट कलिकायन (Forket or flap budding) कहते हैं।

3. छल्ला कलिकायन (Ring budding)– मूलवृन्त के ऊपरी भाग के कटे हुए सिरे से 2.5 सेमी. नीचे तक छाल हटाकर वलय बना दी जाती है। अब वलय के रूप में बराबर व्यास की कलिका निकाल कर पहना दी जाती है। सिनकोना, शहतूत, बेर आदि।

जब मूलवृन्त के चारों ओर से घेरे के रूप में छाल हटा कर कलिका ट्यूब रूप से निकालकर मूलवृन्त पर बांध देते हैं इसमें वलय न होकर कटान होता है तो फ्लूट कलिकायन (Flute budding) कहलाता है।

4. चिप कलिकायन (Chip budding)– मूलवृन्त में जमीन से 1 फीट ऊँचाई पर 3.5–5 सेमी. लम्बाई की एक खांचा (Groove) तैयार किया जाता है। सांकुर शाखा को लकड़ी सहित छाल इसी आकार में काट कर लगाकर बाँध दिया जाता है। अंगूर में प्रवर्द्धन हेतु अपनाई जाती है।

5. शिखर रोपण (Top working)– बीजू, पुराने वृक्ष निम्न श्रेणी की किस्म में कलिकायन या उपरोपण क्रिया द्वारा इच्छित किस्मों में परिवर्तित करने की विधि शिखर रोपण या टॉप वर्किंग कहलाता है। यह बीजू व जीर्णोद्धार किये जा सकने वाले वृक्षों में अपना सकते हैं। आम, अमरूद, आँवला, नींबू वर्गीय फल, सेब आदि में कर सकते हैं।

जब पुराने पौधों को बिना शिरोहीन (Head back) किये विभिन्न शाखाओं के पार्श्व में अधिक संख्या में उपरोपण या कलिकायन कर इच्छित किस्मों में परिवर्तित क्रिया अपनाई जाती है तो उसे फ्रेम वर्किंग (Frame working) कहते हैं।

जब किसी पौधे पर एक ही प्रकार की कलिकायन या रोपण की क्रिया लगातार दो बार की जाती है तो इसको दोहरा रोपण (Double working) कहते हैं। यह साधारणतया तभी करते हैं जब मूलवृन्त तथा शाख के बीच मिलने की असमर्थता (incompatability) को दूर करना होता है।

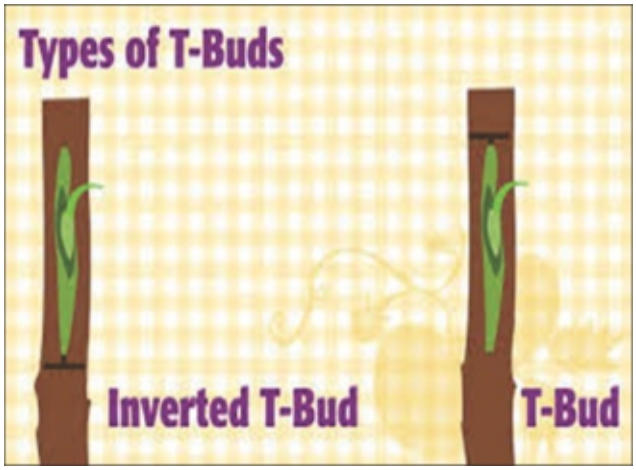

टी या शील्ड कलिकायन

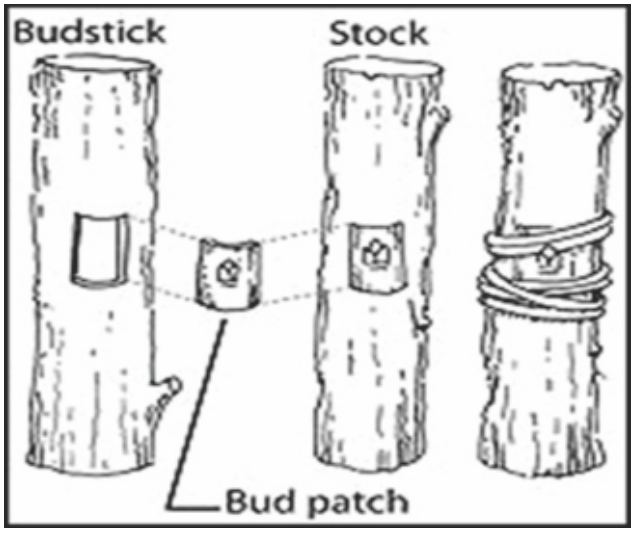

पैबन्द कलिकायन

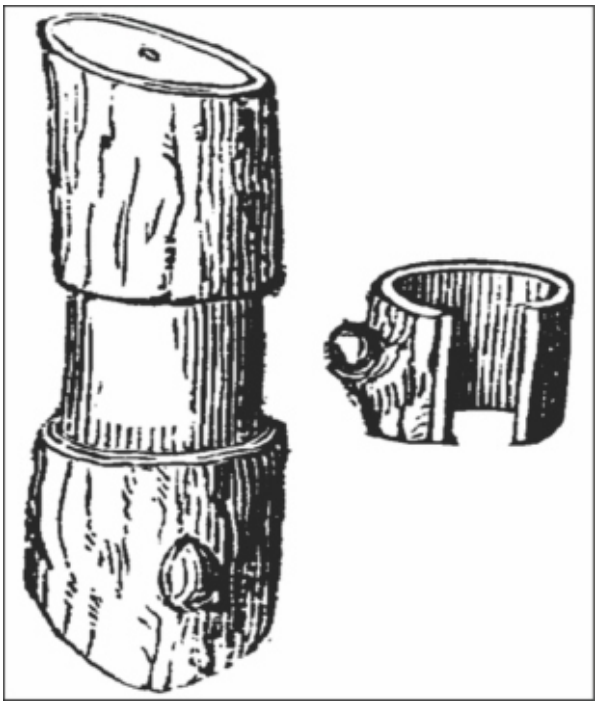

छल्ला कलिकायन

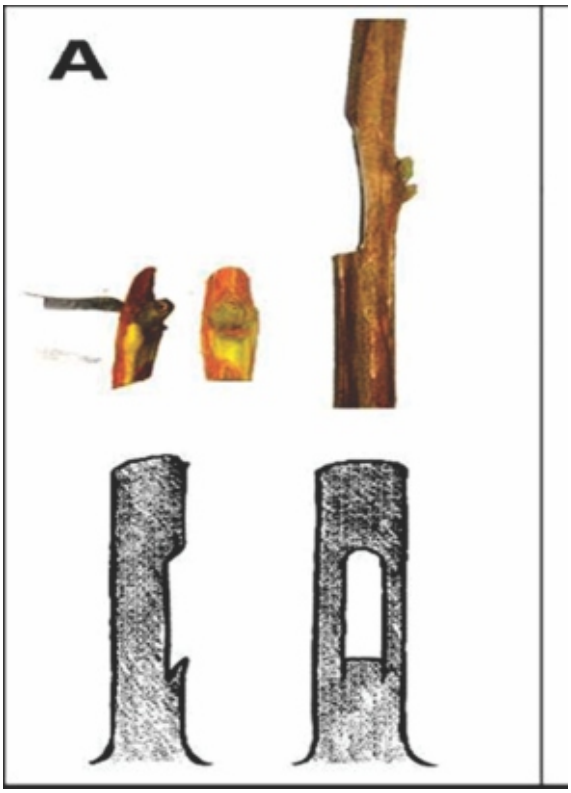

चिप कलिकायन शिखर रोपण

6. ऊत्तक संवर्धन (Tissue culture)– ऊत्तक संवर्धन में एक कोशिका से पूरा पौधा बनने की क्षमता होती है, इस क्षमता को टोटियोपोटेन्सी (Totiopotency) कहते हैं। यह पादप प्रवर्द्धन या प्रसारण की नवीनतम विधि है। इसमें पौधे के किसी सूक्ष्म भाग (Ex plant) जैसे तना, जड़, पत्ती, पराग, भ्रूण आदि को कृत्रिम माध्यम में प्रत्यारोपित कर नये पौधे तैयार किये जाते हैं। इस विधि में कम जगह व पौधों से लाखों पौधे तैयार एक साथ किये जा सकते हैं। केला, खजूर, स्ट्रोबेरी, अनार आदि फलदार पौधे इस विधि से तैयार किये जा रहे हैं। इस विधि में कृत्रिम माध्यम (Artificial media) जो कि लवण, शर्करा, विटामिन्स, अमीनो अम्ल, वृद्धि नियामक पदार्थ तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों का मिश्रण होता है। केले में विषाणु रहित पौधे इस विधि से तैयार कर सकते हैं जिसमें प्ररोह का शीर्ष विभाज्योतकी मेरिस्टम भाग को एक्स प्लान्ट (Ex plant) के रूप में लेते हैं।

7. अलैंगिक प्रवर्द्धन में पौधे के जड़, तना, पत्तियाँ आदि के रूपान्तरण से मातृ वृक्ष के समान गुणों वाले पौधे तैयार होते हैं जिन्हें पौधे प्रसारण में उपयोग में ले सकते हैं जो निम्न हैं–

1. ऊपरी भूस्तारी (रनर्स)– विशेष तने जो भूमि पर लेट कर बढ़ते हैं तथा भूमि के सम्पर्क पर आने पर पर्व संधि या गाँठ से जड़ें निकलकर नया पादप बन जाता है उदाहरण– स्ट्रोबेरी।

2. अन्तः भूस्तारी (सकर्स)– भूमि के अन्दर तने जड़ तंत्र के समीप से निकले प्ररोह जिनमें अपस्थानिक (adventitious) कलिकाएँ होती हैं तथा जिनसे नया पौधा बन जाता है उदाहरण– अनन्नास, केला, बांस, आदि।

3. भूस्तारी (स्टोलन)– तने के आकार से निकली पार्श्व पतली शाख जिनमें पर्व संधियाँ लम्बी होती है तथा अन्तिम सिरे पर जड़ें निकलकर नया पौधा बनता है जैसे– दूब घास, पुदीना।

4. शल्ककंद (बल्ब)– तने का रूपान्तर है जिसमें छोटा उर्द्धवांतर तने का कक्ष मांसल शल्क (स्केल्स) से घिरा रहता है। इसी में भोज्य पदार्थ संग्रहित रहता है तथा बाह्य आवरण सूखा व पतला झिल्लीनुमा परत से ढका रह भी सकता है (जैसे प्याज) इसे टूनिकेटेड बल्ब या बाह्य आवरण विहीन भी हो सकता है (जैसे लिली) इसे नॉन–टूनिकेटेड बल्ब कहते हैं।

5. घनकंद (कोर्म)– तने के कक्ष का आधारीय भाग सूखे स्केल्स जैसी पत्तियों से ढका रहता है तथा इस तने पर पर्व व पर्व संधियां बनी रहती है जैसे ग्लेडियोलस, केसर, फ्रीसिया आदि। पुराने कोर्म के साथ नये छोटे–छोटे कोर्म सदृश्य संरचनाएँ कोरमेल कहलाती है। रोपण में साबुत (ग्लेडियोलस) या टुकड़े काटकर विभिन्न भागों जिसमें हर भाग में एक कलिका हो (याम) उपयोग में ले सकते हैं।

6. कंद (Tuber)– भूस्तारी (स्टोलन) तने का आधार भोज्य पदार्थ का संग्रहण कर फूल जाता है। जैसे आलू, आर्टीचोक, कैलेडियम तथा इस पर बनी पर्व संधियों के कक्ष में कलिकायें होती हैं। रोपण साबुत या काटकर कर सकते हैं। कई बार ऐसे कंद पत्तियों के कक्ष में वायवीय (Aerial) भागों में बन जाते हैं उन संरचनाओं को ट्यूबरकल्स (Tubercles) कहते हैं जिन्हें पौध प्रसारण में उपयोग में लेते हैं। जैसे डायोसकोरिया याम।

7. कंदीय जड़ें (Tuberous roots)– अपस्थानिक जड़ें फूल कर भोज्य पदार्थों का संग्रहण करती है । इन पर पर्व व पर्व संधियां नहीं होती इन्हें कंदीय जड़ें कहते हैं जैसे शकरकंद।

8. राइजोम (Rhizome)– तने का रूपान्तरण जिसमें भूमिगत तना क्षैतिज रूप में वृद्धि करता है तथा इस पर पर्व व पर्व संधियां रहती है जैसे अदरक, हल्दी, केला आइरिस।

9. ऑफसूट (Off shoot)– विशेष तरह की पार्श्व शाखा जो मुख्य तनें के पास से रोजेट जैसी शक्ल में निकलती है जिसे तेज धार वाले चाकू से हटाकर पौध प्रसारण में उपयोग में लेते हैं जैसे खजूर

10. स्लीप (Slip)– फलवृन्त से भी कभी–कभी प्ररोह निकलता है जिन्हें पौधरोपण के काम लेते हैं स्लीप कहलाता है उदाः अनन्नास।

अलैंगिक प्रवर्द्धन में पौधे के जड़, तना, पत्तियाँ आदि के रूपान्तरण

शल्ककंद (बल्ब)

कंद (ट्यूबर)

कंदीय जड़ें

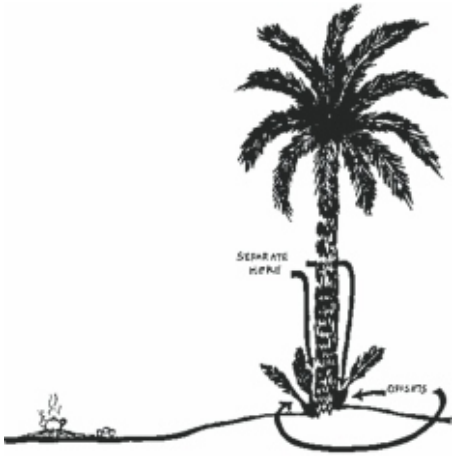

ऑफसूट

भूस्तारी (रनर्स)

स्लीप

अन्तः भूस्तारी (सकर्स)

राइजोम

भूस्तारी (स्टोलन)

घनकंद (कोर्म)

महत्वपूर्ण बिन्दु :–

1. नीबू,व अनार में कलम व गूटी करते समय उस शाखा का चुनाव करे जो एक वर्ष पुरानी व लगभग 1सेमी. मोटी हो।
2. अमरूद में वेज ग्राफ्टिंग आधुनिक व ज्यादा पौधे कम समय मे तैयार करने मे उपयुक्त प्रवर्द्धन विधि है।
3. पपीते की पौधशाला अप्रैल–जून माह उठे तल युक्त क्यारियों में कर उन्हें 5–7 सेमी. अवस्था पर पोलीथीन की थैलियों तथा 15–20सेमी. के हो जाये तो खेत में लगा देना चाहिए।
4. बेर के पौधे तैयार करने हेतु बीज बुवाई मार्च के प्रथम पखवाड़े तक कर 3–4 माह के मूलवृन्त पर कलिकायन करें तथा इसके एक –डेढ़ माह बाद सफल पौधे खेत में स्थानान्तरण योग्य हो जाते हैं।
5. अंगूर में आजकल पैच कलिकायन द्वारा डॉगरिज मूलवृन्त पर कर क्षारीय भूमि में भी खेती कर सकते हैं।
6. बीजू देशी वृक्षों (आम, ऑवला, बेर, चीकू आदि) में जीर्णोद्धार व शिखर–फ्रेम रोपण कर इच्छित किस्म में बदला जा सकता है।
7. खजूर में ऑफशूट 4–5 वर्ष पुराने पौधे के तने के पास से निकलते है तथा वृक्ष अपने आयु काल में 8–20 सकर्स पैदा करता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. आलू का कंद किस पौध भाग का रूपान्तरण है–
   (अ) जड़ (ब) तना
   (स) शाख (द) कलिका
2. विषाणु रहित पौध कौनसी प्रवर्द्धन विधि से तैयार कर सकते हैं ?
   (अ) कलम (ब) दाब
   (स) उपरोपण (द) उत्तक संवर्द्धन
3. दाब कलम में जड़ निकालना कौनसे सिद्धान्त पर आधारित है?
   (अ) इटियोलेशन (ब) टोटियोपोटेन्सी
   (स) टॉप वर्किंग (द) स्टॉयोनिक प्रभाव
4. कौनसी दाब कलम में नये प्ररोह पर मिट्टी चढ़ाते हैं तथा इन पर जड़ें निकलने पर पौधा तैयार कर लेते हैं ?
   (अ) मारकोटेज (ब) स्टूल
   (स) मिश्रित (द) शीर्ष
5. पुराने बीजू पौधों को इच्छित किस्म में परिवर्तन हेतु निम्न में से कौनसी तकनीक अपनाई जाती है ?
   (अ) उपरोपण (ब) ब्रिज ग्राफ्टिंग
   (स) शीर्ष वर्किंग (द) छल्ला कलिकायन
6. स्ट्रॉबेरी व अनन्नास का प्रसारण क्रमशः किस विधि से करते हैं ?
   (अ) रनर व स्लीप (ब) स्लीप व रनर
   (स) दोनों सकर्स (द) कलम व ऑफ सूट
7. ग्राफ्टिंग पौधे में ऊपरी भाग को क्या कहा जाता है ?
   (अ) सांकुर (ब) मूलवृन्त
   (स) मातृ वृक्ष (द) सभी

अतिलघूत्तरात्मक –

1. प्रवर्द्धन किसे कहते हैं?
2. कलिकायन को परिभाषित करो।
3. गुटी का दूसरा नाम बताइये।
4. आम प्रवर्द्धन की विधियाँ बताइये।
5. टाटियोंपोटेन्सी क्या है?
6. केले का सत्य तना क्या कहलाता है?
7. गुठली उपरोपण कौन से फल की पौध प्रसारण की विधि है?
8. इनार्चिंग का दूसरा नाम बताइये।
9. कौन से फलदार वृक्ष को बीज से प्रवर्द्धन किया जाता है।
10. फ्रेम वर्किंग पर टिप्पणी लिखो।

लघूत्तरात्मक–

1. मृदु काष्ठ ग्राफ्टिंग क्या है।
2. शीर्ष वर्किंग कब उपयोग में लेते हैं।
3. दोहरी उपरोपण क्या है।
4. ऑफ सूट व सर्कस में अन्तर लिखों।
5. उत्तक संवर्द्धन तकनीक पर टिप्पणी लिखो।

निबंधात्मक –

1. लैंगिक व अलैंगिक पौध प्रसारण पर विस्तार से लिखो।
2. कलम व दाब कलम को परिभाषित करते हुए विभिन्न विधियों का वर्णन करो।
3. उपरोपण क्या होता है तथा इसकी विधियों का वर्णन करो।

उत्तरमाला

1. (ब) 2. (द) 3. (अ) 4. (ब) 5. (स)
6. (अ) 7. (अ)

अध्याय – 9
फलोद्यान प्रबन्धन
(Orchard Management)

फलोद्यान के स्थान का चुनाव, योजना, रेखांकन, गड्डे तैयार करना, पौधे लगाना एवं सामान्य देखभाल (Selection of site, Planning, Layout and Planting of Fruit Plants)

9.1 स्थान का चुनाव – (Selection of site)

फलोद्यान लगाना एक स्थायी एवं दीर्घकालीन नियोजन है इसलिए इसके लिए स्थान का चुनाव अति महत्वपूर्ण है। स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ फलवृक्ष उचित वृद्धि कर अधिक फल उत्पादन कर उत्पादन कर्ता को अधिक लाभ मिल सके। सम्भव हो तो ऐसे क्षेत्र का चुनाव करे जहाँ पहले से ही फलवृक्षों के बगीचे लगे हों, इससे अनेक सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं।

स्थान का चुनाव करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है –

1. जलवायु – (Climate)

फल उत्पादन में जलवायु एक अति महत्वपूर्ण कारक है। किसी स्थान विशेष की वार्षिक वर्षा, तापमान, हवा, प्रकाश आदि के औसत को जलवायु से जाना जाता है। प्रत्येक फलवृक्ष के लिए एक निश्चित जलवायु की आवश्यकता होती है। स्थान विशेष की जलवायु के अनुसार ही फलवृक्षों का रोपण किया जाता है। जैसे–शुष्क एवं गर्म जलवायु में खजूर, बेर, अनार, आदि लगाये जाते है। गर्म एवं तर जलवायु में केला, नारियल अनन्नास आदि ठण्डी जलवायु में सेव, नाशपती आदि को लगाया जा सकता हैं। फल उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान में शुष्क, अर्धशुष्क तथा अर्धनम जलवायु के फलों को ही उगाया जा सकता है।

2. भूमि – (Soil)

प्रायः अलग–अलग फलवृक्षों के लिए विशेष प्रकार की भूमि उपयुक्त होती है। अतः स्थान का चयन करते समय भूमि का विशेष ध्यान रखा जाता है। फलोद्यान के लिए दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है। भूमि की सतह 2 मीटर तक गहरी हो अर्थात कोई कठोर सतह नहीं हो, जिससे फलवृक्षों की बढ़वार अच्छी हो सके। भूमि अधिक अम्लीय एवं अधिक क्षारीय या लवणोयुक्त नहीं होनी चाहिए। फलोद्यान के लिए विकार रहित, जीवांशयुक्त गहरी भूमि का चयन करना चाहिए।

3. धरातल एवं स्थिति – (Topography)

फलोद्यान के लिए समतल भूमि का चुनाव करना चाहिए। अधिक ऊँची–नीची भूमि में वर्षा में कटाव की सम्भावना रहती है। साथ ही कृषि क्रियाएँ करने में कठिनाई आती है। भूमि की स्थिति जंगल, उद्योग व ईंट भट्टों के पास भी नहीं होनी चाहिए इससे फलवृक्षों की वृद्धि एवं उपज की गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव होता है। आम में ब्लेकटिप नामक रोग उद्योग व भट्टे के धुएँ से प्रदूषण के कारण ही होता है।

4. सिंचाई एवं जल निकास – (Irrigation and drainage)

फलवृक्षों को अधिक पानी की आवश्यकता होती है अतः फलवृक्षों की अच्छी वृद्धि एवं फलत के लिए कम लागत पर पर्याप्त पानी उपलब्ध होना चाहिए। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी गुणवत्तायुक्त, वर्षभर पर्याप्त पानी सिंचाई के लिए उपलब्ध रहना चाहिए क्योकि आम, अमरूद, पपीता, अंगूर, केला, नींबू, संतरा, आदि फलवृक्षों को वर्षभर नियमित सिंचाई की आवश्यकता रहती हैं। सिंचाई के साथ–साथ वर्षा ऋतु में अधिक पानी के निकास की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि फलोद्यान में लगातार लम्बे समय तक पानी भरे रहने से भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है जिससे फलवृक्षों की वृद्धि एवं उपज प्रभावित होती है।

5. अन्य सुविधाएँ – (Other facilities)

फलोद्यान के लिए स्थान के चुनाव में निम्न सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। जिससे उद्यान से वांछित लाभ प्राप्त किया जा सके।

1. यातायात, परिवहन व सड़क की सुविधा अच्छी व आवश्यकता अनुरूप होनी चाहिए।
2. फलोद्यान की उपज की बिक्री हेतु बाजार की उपलब्धता सुनिश्चित हो।
3. उद्यान में विभिन्न कार्यों के लिए कुशल व अकुशल श्रमिकों की उपलब्धता हो।
4. समय–समय पर तकनीकी जानकारी की सुविधा हो।
5. उद्यान की सभी प्रकार से सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।

उद्यान योजना – (Orchard planning)

फलवृक्षों का रोपण एक दीर्घकालीन कार्य है अतः फलवृक्ष लगाने से पूर्व उसकी अच्छी प्रकार से योजना तैयार करनी चाहिए। उद्यान की सफलता एक अच्छी योजना के क्रियान्विति पर निर्भर करती है। उद्यान की योजना में निम्न बिन्दुओं का ध्यान अति आवश्यक है।

1. बाड़ लगाना – (Fencing)

स्थान के चुनाव के बाद एवं फलवृक्ष लगाने से पहले

उद्यान की सुरक्षा के लिए बाड़ लगाना अति आवश्यक है। इसके लिए कंटीली झाड़ियाँ, मिट्टी की डोल, कंटीले तार, पक्की दीवार आदि में से वित्तीय सुविधानुसार चुनाव करना चाहिए। प्रारम्भ में कुछ वर्षों तक कांटेदार पौधे जैसे – जंगलजलेबी, विलायती बबूल, करौंदा, मेहन्दी, थोर, नागफनी आदि की बाड़ कर उद्यान की सुरक्षा की जा सकती है।

2. भूमि की प्रारम्भिक तैयारी – (Primary operation)

चयनित स्थान को समतल करना, पत्थर आदि निकालना तथा जंगली पैड़–पौधों एवं खरपतवारों को निकालना प्रारम्भिक कार्य होते हैं। इससे स्थान फल वृक्ष लगाने के लिए उपयुक्त अवस्था में आ जाता है। यदि स्थान पर पूर्व से ही खेती हो रही है तो प्रारम्भिक तैयारी की आवश्यकता नही रहती है बल्कि सामान्य जुताई आदि कर तैयार कर लेते हैं। अच्छा रहे भूमि समतल कर 1–2 हरी खाद वाली फसलें बुआई करने से मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार आता है।

3. वायुरोधी वृक्ष – (Wind break)

फलवृक्षों का ठण्डी, गर्म एवं तेज हवाओं से बचाव के लिए बाग के उत्तर–पश्चिम दिशा में वायुरोधी वृक्षों का रोपण करना चाहिए। वायुरोधी वृक्ष ठण्डी, गर्म एवं तेज हवाओं से फलवृक्षों का बचाव कर उत्पादन में वृद्धि करते है। वायुरोधी वृक्ष ऊँचे, सघन, शीघ्र बढ़ने वाले जैसे– देशी जामुन, आम, नीम, शहतूत, कमरख, शीशम, आदि को लगाया जा सकता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखे कि वायुरोधी वृक्ष, मूल वृक्षों को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाएँ।

4. सड़क एवं रास्ते – (Road and path)

फलोद्यान की उपज का निस्तारण एवं आवश्यक सामग्री जैसे– खाद, उर्वरक, दवा, मशीन, उपकरण आदि को उद्यान के प्रत्येक भाग तक सुगमता पूर्वक पहुँचाने के लिए सड़क एवं रास्तों का प्रावधान रखना चाहिए। प्रायः उद्यान में एक मुख्य सड़क तथा प्रत्येक खण्ड या हिस्से को जोड़ने के लिए सहायक रास्ते बनाने चाहिए। सड़क व रास्ते पक्के, कच्चे, या पत्थर आदि के हो सकते हैं, परन्तु सही अवस्था में तथा आवागमन सुचारू हो सके का ध्यान रखना चाहिए। उद्यान में जमीन का अधिक उपयोग हो सके इसके लिए फलवृक्षों के बीच में उपलब्ध अन्तर का भी इस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है।

5. सिंचाई की नालियाँ – (Irrigation channels)

उद्यान में प्रत्येक फलवृक्ष तक सिंचाई का पानी सुगमता से पहुँचे, इसके लिए सिंचाई की नालियाँ बनानी चाहिए। यह नालियाँ कच्ची, पक्की या सीमेन्ट के पाइपों से भी बनायी जा सकती हैं। आजकल उद्यान में सिंचाई के लिये अत्याधुनिक विधियाँ ड्रिप सिंचाई, फव्वारा सिंचाई आदि का अत्यधिक प्रचलन है। यह कम पानी में अधिक उपयोगी तथा कम कीमत पर अधिक लाभदायक रहती है।

6. आवास एवं कार्यालय – (Residance and office)

फलोद्यान की योजना में अच्छे प्रबन्धन एवं पर्याप्त देखभाल के लिए आवास एवं निरीक्षण, भण्डारण, पैकिंग, विपणन आदि के लिए कार्यालय, भवन का निर्माण भी करना चाहिए। हालांकि इनका निर्माण प्रारम्भिक लागत कम करने के लिए बाद के वर्षों में भी किया जा सकता है, परन्तु योजना में स्थान अवश्य देना चाहिए।

रेखांकन – (Layout)

फलोद्यान का अच्छा रेखांकन वह होता है, जिसमें उद्यान की भूमि का सदुपयोग हो तथा प्रत्येक फलवृक्ष को वृद्धि करने, प्रकाश के लिए पर्याप्त स्थान व उद्यानिक क्रियाएँ सुगमता से की जा सकें। फलोद्यान के रेखांकन के लिए सर्वप्रथम एक आधार रेखा खींची जाती है। यह आधार रेखा बाड़ एवं वायुरोधी वृक्षों की कतार से लगभग 5–6 मीटर की दूरी पर बनानी चाहिए।

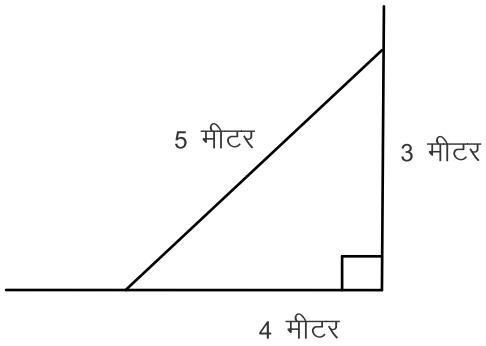

इस आधार रेखा के एक सिरे पर समकोण बनाती हुयी एक लम्बवत रेखा खींच लेते हैं। इसके पश्चात बाग का रेखांकन विभिन्न विधियों से किया जाता है। फलवृक्षों की प्रथम पंक्ति, पौधे के आपसी अन्तर की आधी दूरी पर चिन्हित की जाती है। जैसे– पौधों की दूरी 8 मीटर हो तो प्रथम पंक्ति 4 मीटर पर होगी, शेष पंक्तियाँ 8 मीटर पर रहेगी।

फलोद्यान में फलवृक्ष लगाने की प्रमुख विधियाँ निम्न है :–

1. वर्गाकार विधि
2. आयताकार विधि
3. त्रिभुजाकार विधि
4. पूरक या पंच भुजाकार विधि
5. षट् भुजाकार विधि
6. कण्टूर विधि / समोच्च रेखा विधि

1. वर्गाकार विधि – (Square system)

यह सबसे सरल, उत्तम एवं अधिक प्रयोग में ली जाने वाली विधि है। इस विधि में पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे का अन्तर समान रखा जाता है। इस विधि में कतार से कतार एवं पौधे से पौधे के समान दूरी पर निशान लगाकर रेखाएँ खींची

जाती है। जिस स्थान पर रेखाएँ आपस में काटती हैं। वहाँ फलवृक्ष लगाया जाता है। इस प्रकार चार फलवृक्ष मिलकर वर्ग का निर्माण करते हैं। इस विधि में बाग सघन नहीं होता तथा कृषि क्रियाएँ आसानी से की जाती हैं।

2. आयताकार विधि – (Rectangular system)

यह वर्गाकार विधि के समान ही होती है अन्तर केवल यह है कि इस विधि में पौधे से पौधे की दूरी पंक्ति से पंक्ति की दूरी से कम होती है। दो पंक्तियों के चार पौधे मिलकर आयत बनाते है। इस विधि में फलवृक्षों को पर्याप्त स्थान मिलता है तथा उद्यानिकी क्रियाएँ करने में आसानी रहती है।

3. त्रिभुजाकार विधि – (Triangular system)

इस विधि में पौधों का अन्तर वर्गाकार विधि की तरह होता है लेकिन दूसरी कतार के पौधे, पहली पंक्ति के दो पौधों के मध्य लगाये जाते हैं। इस विधि में तीन फलवृक्ष मिलकर त्रिभुज का निर्माण करते हैं। पौधे लगाने का यह क्रम आगे की पंक्तियों तक बढ़ाया जाता है। इस विधि में पौधों का अन्तर 10 मीटर है तो पहली पंक्ति का पहला पौधा 5 मीटर की दूरी पर लेकिन दूसरी पंक्ति का पौधा 10 मीटर की दूरी पर होगा। इस विधि में भूमि का सदुपयोग होता है परन्तु कृषि क्रियाओं में कठिनाई होती है।

4. पंच भुजाकार विधि– (Filler system/ Quincunx)

इसको पूरक विधि के नाम से भी जाना जाता है। यह वर्गाकार विधि की तरह ही है। परन्तु वर्गाकार विधि के चार फलवृक्षों के मध्य एक फलवृक्ष और लगाया जाता है। इस तरह पाँच फलवृक्षों से पंचभुज का निर्माण होता है। इस विधि में वर्गाकार से लगभग दो गुने फलवृक्षों का रोपण होने से बाग सघन हो जाता है। अतः चारो कोनो पर स्थायी फलवृक्ष तथा बीच में अस्थायी या पूरक फलवृक्ष को लगाते है जो कि कुछ वर्षों बाद हटा दिया जाता है। पूरक पौधे के रूप में पपीता, फालसा, अनन्नास, केला आदि का रोपण करते हैं। इससे फलोद्यान से प्रारम्भ में अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

5. षट्भुजाकार विधि – (Hexagonal system)

इस विधि को समत्रिबाहु त्रिभुज विधि भी कहते है। इसमें छः फलवृक्षों से मिलकर षट्भुजाकार आकृति का निर्माण होता है। तथा इनके बीच एक अतिरिक्त पौधा सातवें पौधे के रूप में रहता है। इससे बाग बहुत सघन हो जाता है। तथा वर्गाकार विधि की तुलना में लगभग 15 प्रतिशत पौधे अधिक लगते हैं। प्रायः शहर के नजदीक मँहगी भूमि में इस विधि से फलवृक्षों का रोपण किया जाता है। बाग सघन होने से कृषि क्रियाओं में असुविधा रहती है।

6. समोच्च रेखा विधि – (Contour system)

इस विधि का प्रयोग ऊँची–नीची, पहाड़ी, असमतल भूमियों में किया जाता है। इसमें ढलान के मध्य पंक्ति बनाकर कन्टूर के साथ–साथ पौधे लगा दिये जाते हैं। इसी सीध में दूसरी ढलान अर्थात कन्टूर पर पौधे लगा देते हैं।

सघन रोपण – (High density planting)

फलोद्यान में एक निश्चित क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन लेने के लिए फलवृक्षों का आपसी अन्तर कम कर रोपण करना सघन रोपण कहलाता है। इससे प्रति ईकाई क्षेत्रफल में फलवृक्षों की संख्या अधिक होने से उपज बढ़ जाती है। इस विधि में उनके आनुवंशिकी में परिवर्तन किये बिना वृक्षों का आकार कम रखा जाता है। फलवृक्षों को छोटा बनाने के लिए बौने मूलवृन्त, बौनी जातियाँ (जैसे –आम में आम्रपाली), काट–छाँट, रसायनों का प्रयोग, उचित पोषण आदि उद्यानिक क्रियाओं को अपनाया जाता है। प्रायः बाग लगाने की वर्गाकार, आयताकार, त्रिभुजाकार विधियों में ही फलवृक्षों का अन्तर कम कर उनकी संख्या बढ़ाते है। इससे उत्पादन अधिक मिलने लगता है। यह प्रयोग शहरी क्षेत्रों में अधिक मंहगी भूमियों में किया जाता है। इस पद्धति में उद्यान प्रबन्धन पर अधिक ध्यान रखा जाता है। आम, सेव, नाशपती, आडू में यह प्रयोग किया जा रहा है। जब फलवृक्षों का अन्तर बहुत कम किया जाता है तो उसे उच्च सघन रोपण कहते हैं।

गड्डे तैयार करना – (Digging of pits)

फलों के पौधे लगाने से पहले निश्चित दूरी पर निशान लगाकर गड्डे खोदना चाहिए। गड्डे फलवृक्ष रोपण के एक माह पूर्व खोद कर खुला छोड़ना चाहिए। वर्षा ऋतु में रोपण के लिए जून माह में तथा बसन्त अर्थात फरवरी में रोपण के लिए जनवरी में गड्डे खोदना चाहिए। गड्डों का आकार फलवृक्षों के आकार पर निर्भर करता है।

पौधे लगाने से एक माह पूर्व गड्डे खोदकर लगभग 15–20 दिन धूप में खुला छोड़ना चाहिए, जिससे कि तेजधूप में हानिकारक जीवाणु आदि नष्ट हो जाएं। गड्डा खोदते समय ऊपर की आधी मिट्टी उपजाऊ होती है इसमें गोबर की खाद/कम्पोस्ट का 1:1 अनुपात में मिलाकर गड्डा भरना चाहिए। गोबर की कच्ची खाद का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा दीमक का प्रकोप रहता है। फलवृक्षों की उचित वृद्धि हेतु गड्डे के आकार के अनुसार खाद या कम्पोस्ट प्रति गड्डे की दर से मिलाना चाहिए। गड्डा भरते समय दीमक से बचाव के लिए 60–100 ग्राम मिथाइल पैराथियान डस्ट या क्लोरोपायरीफास प्रति गड्डा मिलाना चाहिए। गड्डे को खेत की सतह से ऊँचाई

1.	छोटे आकार के फलवृक्ष जैसे–पपीता, फालसा, केला आदि।	50 x 50 x 50 सेमी आकार में
2.	मध्यम आकार के फलवृक्ष जैसे–अनार, अमरूद, नींबू आदि।	75 x 75 x 75 सेमी आकार में
3.	बडे आकार के फलवृक्ष जैसे – कटहल, आम आदि।	1 x 1 x 1 मी आकार में

तक भर कर सिंचाई करते है जिससे कि गड्डे में मिट्टी अच्छी प्रकार भर जाएं।

पौधे लगाना – (Planting)

फलोद्यान में फलवृक्षों को उनकी प्रकृति, भूमि, जलवायु आदि के अनुसार उचित दूरी पर लगाना चाहिए। फलवृक्षों का आपसी अन्तर अधिक रखने पर पौधों की संख्या कम होने से पैदावार कम हो जाती हैं। जबकि सघन रोपण से गुणवत्ता पूर्ण उत्पादन नहीं मिल पाता। अतः फलवृक्षों को पर्याप्त अन्तर पर रोपण करना चाहिए जिससे कि बाद में किसी प्रकार की कठिनाई नही हो। फलवृक्षों को लगाने की दूरी निम्नानुसार हैः–

आम, कटहल – 10 × 10 मीटर

आँवला, लीची, चीकू – 9 × 9 मीटर

अमरूद, बेर – 8 × 8 मीटर

नींबू, माल्टा, नाशपती, खजूर – 6 X 6 मीटर

पपीता, केला, अंगूर, फालसा – 3 X 3 मीटर

पौधे लगाने का समय – (Time of planting)

फलदार पौधों की रोपाई फलों के अनुसार वर्ष में दो बार होती है। सदाबहार फलवृक्षों को वर्षा ऋतु अर्थात जुलाई–अगस्त में लगाना उत्तम रहता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में यह कार्य सितम्बर में भी किया जा सकता है। वर्षा के अलावा पौधों को बसन्त ऋतु अर्थात फरवरी–मार्च में भी लगाया जा सकता है लेकिन इस समय ग्रीष्म में छोटे फलवृक्षों को गर्मी से बचाव एवं सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो। पतझड़ वाले वृक्षों को सुषुप्तावस्था अर्थात जनवरी में भी रोपण किया जा सकता है।

पौधे लगाते समय सावधानियाँ (Precautions at the time of planting)

फलों के पौधों को गड्डों में लगाते समय निम्न सावधानियाँ रखने से बाद में होने वाली कठिनाईयों से बचाव हो जाता हैः–

1. पौधा हमेशा सांयकाल लगाएं। कभी भी तेज धूप या तेज वर्षा मे रोपण नहीं करें।
2. पौधे पर लिपटी घास या पोलिथीन को सावधानी से अलग करें। पौधे के साथ लगी मिट्टी (पिण्ड) को नुकसान नहीं हो।
3. पौधे पर रोपण या कलिकायन का जुड़ाव भूमितल से 25 सेन्टीमीटर ऊपर होनी चाहिए।
4. पौधा अधिक गहराई पर नहीं लगाएं।
5. पौधा लगाने से पूर्व ऊपरी भाग की 4–5 पत्तियाँ छोडकर शेष पत्तियाँ हटा देना चाहिए।
6. पौधे को गड्डे में सीधा मध्य में लगावे तथा पौधा लगाने के बाद चारो तरफ से मिट्टी को अच्छी प्रकार दबा देना चाहिए।
7. पौधा लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करें।
8. यदि आवश्यक हो तो लकड़ी, बांस आदि का सहारा लगाएं जिससे तेज हवा से पौधो को नुकसान नहीं हो।

सामान्य देखभाल – (General care)

फलोद्यान में फलवृक्ष को स्थायी रूप से रोपण के बाद वह अच्छी वृद्धि कर सके तथा स्वस्थ्य रहे इसके लिए उनकी देखभाल पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके लिए निम्न क्रियाएँ समय–समय पर की जाती है।

1. पौधों को आवश्यकतानुसार सिंचाई करना। सिंचाई सामान्यतः गर्मियों में 7–8 दिन के अन्तर पर तथा सर्दियों में 10–15 दिन के अन्तराल पर करते हैं। सिंचाई की मात्रा कम या अधिक नहीं हो कर, आवश्यकतानुसार हो। प्रायः छोटे फलवृक्षों में इसके लिए ड्रिप सिंचाई विधि अच्छी मानी जाती है।
2. फलवृक्षों के आस–पास खरपतवार भी उग आते हैं। इससे फलवृक्षों की वृद्धि प्रभावित होती है। अतः बाग में समय–समय पर निराई गुड़ाई कर खरपतवारों को निकालते रहने से मृदा की भौतिक दशा में सुधार आता है तथा पौधे अधिक तेजी से वृद्धि करते हैं।
3. फलवृक्षों को भूमि की दशा के अनुसार खाद एवं उर्वरक भी देना आवश्यक है। प्रायः वर्ष में एक बार संतुलित मात्रा में इसका प्रयोग करना चाहिए। उर्वरक प्रयोग के बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें।
4. शीतकाल में पाले एवं ग्रीष्म में गर्म हवाओं से छोटे पौधों का बचाव अवश्य करें। इसके लिए दक्षिण दिशा में खुला छोड़कर घास/टाटियाँ/सरकण्डे से ढकना तथा छाया करनी जैसी क्रियाएँ की जानी चाहिए।
5. फलवृक्षों का बड़े होने पर फलतः के लिए अच्छा ढांचा तैयार हो, इसके लिए प्रारम्भ से ही उसकी आवश्यकतानुसार कांट–छांट तथा सधाई की क्रियाएँ की जाएं। यह कार्य प्रशिक्षित व्यक्ति ही करें। इसका ध्यान रखें।
6. कीट एवं बीमारियों से बचाव के लिए दवा आदि का छिड़काव करें तथा आवश्यक होने पर पादप हार्मोन का भी छिड़काव कर पौधों को स्वस्थ्य रखें।
7. कभी–कभी किन्हीं क्षेत्रों में तेज हवाओं से छोटे पौधों को काफी नुकसान होता है। अतः ऐसी स्थिति में उनको लकड़ी, बांस आदि का सहारा भी दें जिससे पौधे टूटे नहीं।

9. 2 प्रतिकूल मौसम एवं बचाव (Adverse weather condition and their remedies)

फलवृक्ष रोपण से लेकर बाद तक मौसम से प्रभावित होता है। फलवृक्षो की वृद्वि, फलन तथा उसकी गुणवत्ता पर मौसम का बहुत अधिक प्रभाव होता है। वातावरण में तापमान का कम या

अधिक होना, तेज हवाओं का चलना, अतिवर्षा का होना, वर्षा का असमय होना आदि सभी मौसम में परिवर्तन के लक्षण हैं। मौसम के इस प्रकार अचानक परिवर्तन से फलवृक्ष बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। इससे फलवृक्षों को काफी हानि होती है तथा उपज भी कम मिलती है।

मौसम की ऐसी परिस्थितियाँ जो फलवृक्षों की वृद्धि, विकास और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, प्रतिकूल मौसमी दशाऐं कहलाती है। मौसम की प्रतिकूल दशाओं में पाला, गर्म हवा या लू, ठण्डी हवाएँ, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आँधी–तूफान आदि शामिल हैं।

पाला या तुषार (Frost)

सर्दी के दिनों में दिसम्बर–जनवरी के माह में जब वायुमण्डल का तापमान रात्रि को $0^{\circ}C$ या इससे नीचे आ जाता है, उस समय घास–फूंस व पौधों की पत्तियों पर पतली पर्त के रूप में बर्फ जम जाती है बर्फ की यह परत पाला कहलाती है।

पाले का प्रभाव (Effect of Frost)

पाले का प्रभाव सभी प्रकार के पेड़–पौधों पर देखा जाता है विशेष रूप से छोटे फलवृक्ष एवं चौड़ी पत्ती वाले फल वृक्ष इससे अधिक प्रभावित होते हैं। वातावरण में तापमान कम हो जाने से पौधों की वृद्धि एवं फलत प्रभावित हो कर रूक जाती है। कभी कभी कम तापमान की स्थिति अधिक समय तक रहने से फलवृक्षों की पत्तियों में विद्यमान कोशिका जल जमकर बर्फ बन जाता है। इससे आयतन बढ़ने के कारण कोशिका भित्ति फट जाती है और कोशिकाएँ मर जाती हैं, इससे पौधा झुलसा हुआ दिखाई देता है और अन्त में नष्ट हो जाता है। उत्तरी भारत व राजस्थान में दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह से जनवरी के अन्त तक पाले का प्रकोप अधिक रहता है। बड़े फलवृक्षों की तुलना में छोटे फलवृक्ष इससे अधिक नष्ट होते हैं।

पाले से बचाव (Precaution from Frost)

पाला तापमान के जमाव बिन्दु के कारण होता है, इस तापमान को नियंत्रित करना कठिन होता है, परन्तु कुछ उपाय ऐसे किये जाते है जिनसे पौधों के आस पास का तापमान बढ़ाया जाकर पाले से बचाव किया जा सकता है। बचाव के कुछ उपाय निम्न है–

1. **सिंचाई करना (Irrigation) :** पाले की आशंका होने पर बाग में सिंचाई करते हैं। सिंचाई सांयकाल करे, जिससे भूमि व फलवृक्षों का तापमान वातावरण से $1–2^{\circ}$ अधिक हो जाता है और पाले का असर पौधों पर कम होता है।
2. **धुआँ करना (Smudging) :** बाग में सांयकाल घासपूस, फसल अवशेष व अन्य पदार्थों को जला देना चाहिए इससे वातावरण में धुंआ होने से तापमान में वृद्धि हो जाती है। यह ध्यान रहे कि घासफूस से धुंआ अधिक होना चाहिए। यह फलवृक्षों को पाले से बचाव का प्रभावी तरीका है।
3. **गंधक के अम्ल का छिड़काव (Acid spray) :** गंधक के अम्ल का हल्की सान्द्रता (0.1%) वाले घोल का छिड़काव करने से पौधो में कम तापमान को सहन करने की क्षमता में वृद्विसे पौधो की पाले से सुरक्षा हो जाती है।
4. **टाटियाँ बांधकर (Shelter) :** नये लगाये गये छोटे फलवृक्षों को सर्दी में घास, सरकण्डे, जूट, मूंज आदि की टाटियाँ बनाकर सायंकाल से सूर्य निकलने तक ढक देते है। इससे उनका कुछ हद तक बचाव हो जाता है।
5. **विद्युत हीटर द्वारा (By electric heater) :** प्रायः यह प्रयोग विदेशो में किया जाता है। इसमें छोटे क्षेत्र में रात्रि के समय उद्यान में स्थान–स्थान पर विद्युत चालित हीटर का प्रयोग करते है। इससे बाग के एक निश्चित क्षेत्र में वातावरण गर्म होकर तापमान में वृद्धि हो जाती है। इससे फलवृक्षों का बचाव होता है। यह एक महंगा तरीका है, हमारे देश में बहुत ही सीमित क्षेत्र में प्रयोग होता है।
6. **वायुरोधी वृक्ष लगाना (Wind breaks) :** फलोद्यान को ठण्डी एवं गर्म हवाओं, लू आदि से बचाव के लिए बाग के उत्तर पश्चिमी दिशा में नीम, जामुन, देशी आम, शहतूत आदि वृक्षों का रोपण किया जाता है। इन वृक्षों से फलवृक्षों की उत्तरी ठण्डी हवाओं से बचाव होता है। साथ ही गर्म हवाएँ व लू से भी बचाव होता है।
7. ऐसे क्षेत्र जहाँ पाले की सम्भावना अधिक होती है उन स्थानों पर फलवृक्षों की पाला रोधी किस्मों का रोपण करना चाहिए।

गर्म हवाएँ (Hot winds) :

भारत के मैदानी क्षेत्रो विशेषकर उत्तरी भारत में गर्मी के दिनों में मई–जून के माह में अधिक तापमान के कारण गर्म हवाएं चलती है इन हवाओं को ''लू'' कहते हैं। इन गर्म हवाओं से भूमि के साथ–साथ वातावरण के तापमान में भी बढ़ोत्तरी होती है जिससे छोटे फल वृक्ष, फूल, फल आदि झुलसकर नष्ट हो जाते है।

गर्म हवाओं का प्रभाव (Effect of hot winds) : गर्म हवाओं से तापमान में वृद्धि हाती है, जिससे वृक्षों की वाष्पोत्सर्जन में बढ़ोतरी होती है, इससे पौधों से पानी का तेजी से ह्रास होने लगता है। पौधा पानी की कमी को सहन नही कर पाता और एक स्थिति के बाद झुलस कर नष्ट हो जाता है। सामान्यत गर्म हवाओं से वातावरण का तापमान अधिक हो जाता है, इससे भी पौधों की पत्तियाँ, कोमल टहनियाँ, फूल, फल आदि झुलस कर नष्ट होते हैं। छोटे पौधों पर यह अधिक नुकसान करता है। कभी कभी पूरा पौधा ही सूखकर नष्ट हो जाता है।

बचाव के उपाय (Precautions) :

1 गर्मी के दिनों में उद्यान में सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो, जब तापमान में बढ़ोतरी हो उस समय पर्याप्त सिंचाई कर फलवृक्षो को बचावें।

2 फलोद्यान के चारो तरफ वायुरोधी वृक्ष लगाकर गर्म हवाओं से सुरक्षा करें।

3. बड़े व पुराने फलवृक्षो के तनों पर सफेद चूने का लेप करे या इन पर कुछ समय के लिए तापरोधी पदार्थो को लपेट देवे।

4. प्रायः गर्म हवाएँ पश्चिम दिशा से चलती है, अतः छोटे फलवृक्षो के इस दिशा में टाटियाँ या सरकण्डे लगाकर लू से रक्षा करें।

5 पानी की पर्याप्त मात्रा हो तो गर्मी में दोपहर के समय उद्यान में स्प्रिकलर या फव्वारा से उद्यान में पानी छिड़के, जिससे आस–पास के वातावरण का तापमान कम होकर फलवृक्षों का बचाव हो सकें।

अतिवृष्टि –

वर्षा का अत्यधिक मात्रा में लम्बे समय तक होना अतिवृष्टि कहलाता है। इससे फलोद्यान में पानी भरने से समस्या होती है वही फलवृक्षों से फल, फूल झड़ने व परागकण नष्ट होने से फलत भी प्रभावित होती है। अतिवृष्टि से छोटे फलवृक्षों के गलने, रोग लगने व कींटो के प्रकोप से बहुत अधिक नुकसान होता है। उद्यान में पानी भरा रहने पर भूमि की भौतिक दशा भी प्रभावित होकर फलवृक्षो को नुकसान करती है।

अतिवृष्टि वाले क्षेत्रों में स्थित फलोद्यान में जल निकास की उचित व्यवस्था होने से फलवृक्षो को कुछ हद तक बचाया जा सकता है।

अनावृष्टि :–

वर्षा का नही होना या बहुत कम मात्रा में होना अनावृष्टि कहलाता है। ऐसी स्थिति में पानी के अभाव में फलवृक्षों की वृद्धि एवं फलत बहुत अधिक प्रभावित होती है पानी के अभाव में पौधों की कार्यिकीय क्रियाएँ सुचारू रूप से सम्पन्न नही होने के कारण फलवृक्षों से उत्पादन नही मिल पाता तथा कभी कभी पौधे सूखकर नष्ट हो जाते हैं।

उद्यान में अनावृष्टि से उत्पन्न पानी की कमी की पूर्ति के लिए सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो जिससे नियमित सिंचाई की जा सके। कम पानी की स्थिति में ड्रिप सिंचाई पद्धति का उपयोग लाभदायक रहता है। फलोद्यान में नमी बनाये रखने के लिए फलवृक्षो के आस पास पलवार (मल्चिंग) का प्रयोग करना चाहिए। फलवृक्षों में रासायनिक उर्वरकों के साथ साथ कार्बनिक खादों का अधिक प्रयोग करना चाहिए। वर्षा के जल का उचित संरक्षण कर, पानी की कमी की पूर्ति की जा सकती है।

आँधी–तूफान –

कभी कभी मौसम में अचानक परिवर्तन के कारण आँधी तूफान आते है जिसमें अत्यधिक तेज गति से हवा वर्षा के साथ आती है। यह स्थिति फलोद्यान के लिए काफी नुकसानदायक रहती है। क्योकि अचानक उत्पन्न ऐसी परिस्थिति से बचाव का कोई संतोषजनक उपाय नही है। तेज आँधी तूफान से फलवृक्षों की शाखाएं टूटना, फलवृक्षों का जड़ से उखड़ना, फूल व फलों का झड़ना तथा परागण प्रक्रिया में अवरोध से सम्पूर्ण फलोद्यान प्रभावित होकर कभी कभी अफलत की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इससे बचाव के लिए फलोद्यान के चारो तरफ वायुरोधी वृक्ष लगाना तथा पक्की ऊँची दीवार बनाकर हवाओं की गति को कम किया जा सकता है। छोटे फलवृक्षों जैसे केला, पपीता आदि को बांस लकड़ी आदि का सहारा लगाना चाहिए।

9.3 उद्यान मे अफलन की समस्याएँ एवं समाधान (Unfruitfulness and their Remedies)

अफलन से तात्पर्य है कि फलवृक्षो में फूल एवं फल नही बनना अथवा बहुत कम या आंशिक रूप से ही आना। अफलन फलोद्यान की एक प्रमुख समस्या है। कभी–कभी वृक्षो पर एक टहनी पर फूल फल लगते हैं जबकि दूसरी टहनी वंचित रह जाती है। ऐसी परिस्थिति में फलोद्यान अनुत्पादक कहलाता है। अर्थात उद्यान से कम फलत या आंशिक फलत के कारण आमदनी कम एवं लागत अधिक होने को फलोद्यान की अनुत्पादकता कहते हैं।

अफलन के कारण (Factors of unfruitfulness) :

प्रायः फलोद्यान में अफलन निम्न दो प्रकार के कारको के कारण होता हैं–

(1) बाह्य कारक **(External factor)**

(2) आंतरिक कारक **(Internal factor)**

(1) बाह्य कारक (External factor) : फलवृक्षों में फूल उत्पन्न होने से लेकर फल पकने तक विभिन्न प्रकार की उद्यानिक क्रियाएँ, मौसम की दशाँए जैसे अनेक कारक होते हैं। जो अफलन की स्थिति उत्पन्न करते हैं। जैसे–

1. **पोषक तत्वों की स्थिति (Nutrients) :** फलवृक्षों में अच्छे फल उत्पादन के लिए पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा का उपलब्ध होना आवश्यक होता है। इन तत्वो में से किसी एक की भी कमी या अधिकता के कारण असन्तुलन हो कर अफलन होता है। जैसे अच्छे फलन के लिए कार्बोहाइड्रेट नाइट्रोजन (C:N) अनुपात में सन्तुलन होना आवश्यक है। फास्फोरस, सल्फर, बोरान तत्वों की कमी से भी फूल नहीं आते हैं। नाइट्रोजन की अधिकता केवल वानस्पतिक वृद्धि को ही बढ़ावा देती है। इस प्रकार फलवृक्षों को संतुलित पोषक तत्वों की उपलब्धता फलन

के लिए आवश्यक है।

2 **मौसम की स्थिति (Weather) :–** कभी–कभी फलवृक्षों पर फूल एवं फल बनते समय मौसम में अचानक परिवर्तन से तेज हवाएँ, आँधी, तूफान, असमय वर्षा पाला लू जैसे प्रतिकूल परिवर्तन होते हैं। विशेषकर फूल आते समय वर्षा, तेज हवाएँ परागण की क्रिया बाधित करती हैं। इससे फलन प्रभावित होकर अफलन की स्थिति उत्पन्न करती है।

3. **रोग एवं कीटो का प्रकोप (Insect and diseases) :** फलोद्यान में कभी कभी कीट एवं रोग के कारण फलन की दशा में अत्यधिक नुकसान होता है जिससे फलवृक्षों से किसी प्रकार उत्पादन नही हो कर अफलन हो जाता है जैसे आम में आम का फुदका कीट, बेर में छाछ्या रोग, पपीता में मोजेक आदि।

4. **सिंचाई (Irrigation) :** फलवृक्षों को पर्याप्त एवं समय पर सिंचाई नही करने से भी काफी नुकसान होता है, विशेष कर फूल फल आते समय, पानी की कमी से फलवृक्षों की आन्तरिक कियाएं प्रभावित होती हैं। जिससे फलन पर विपरीत प्रभाव होता है।

5. **कटाई–छँटाई (Pruning) :** फलवृक्षों में समय पर कटाई छँटाई करने से वृद्विएवं फलत अच्छी प्राप्त होती है। अतः समय पर फलवृक्षों की आवश्यकतानुसार काट–छाँट नही करने पर अफलन की स्थिति उत्पन्न होती है। जैसे बेर, अंगूर आदि।

6. **अनुपयुक्त भूमि (Soil condition) :** फलवृक्षों को प्रतिकूल एवं विकारयुक्त भूमि में रोपण करने से भी फूल–फल प्रभावित होता हैं। भूमि के कठोर, पथरीली, कार्बनिक पदार्थ की कमी की स्थिति में वृद्धि प्रभावित होती है तथा उचित पोषक तत्वों के अभाव में अफलन होता है।

आंतरिक कारक (Internal factor) : ऐसे कारक फलवृक्षों की आंतरिक परिस्थितियों से सम्बन्ध रखते हैं जिससे फलवृक्षो में फूल आने के बाद किन्ही कारणों से प्रभावित होकर वह समय पर फल नही बनकर नष्ट हो जाता है। ऐसे कारक निम्न तीन प्रकार के हैं :–

1. आनुवंशिकी कारक **(Genetical factors)**
2. दैहिक कारक **(Physiological factors)**
3. फलवृक्षों की विकासीय प्रवृत्ति **(Evolutionary tendencies of fruit plants)**

1. **आनुवंशिकी कारक (Genetical factors) -** इसमें फलवृक्षों के निम्न आनुवांशिकीय विकार उत्पन्न होने से पूर्ण फूल बनने में समस्या आती है, जैसे :–

(अ) असंगतता (Incompatibility) – इसमें पुष्पों में जननांगो के पूर्ण विकसित होने के बाद भी बीजाण्ड एवं परागकण में असंगति होती है जिससे फूल परागित होने के बाद भी नष्ट हो जाता है। जैसे आड़ू, नाशपाती, सेव आदि में

(ब) संकरीकरण (Hybridity) – कुछ फलवृक्षों में संकरीकरण के समय गुणसूत्रों के असमान विभाजन के कारण स्वबंध्यता की स्थिति उत्पन्न होती हैं जिससे फूल से फल का निर्माण नहीं हो पाता।

(स) स्वबंध्यता (Self Sterility) – फलवृक्षों के पुष्पों में पूर्ण जननांगों (नर एवं मादा) के उपस्थित होने के बाद भी दोनो का आपस में निषेचन नही हो पाता और फूल से फल नही बन पाते हैं। अर्थात एक ही प्रकार की जाति में उसी जाति के परागकणों का अक्षम होना तथा अफलन होना।

2. **कायिकीय प्रभाव (Physiological factors) :** कभी–कभी फलवृक्षों में अन्य कारकों के अलावा कायिकीय क्रियाएँ जैसे नाइट्रोजन की अधिक मात्रा, कार्बोहाइड्रेट का स्तर, पादप हार्मोन का प्रभाव, मात्रा एवं संतुलन आदि ऐसे कारक हैं जो पौधों की वृद्वि, फूल लगने एवं फल बनने को प्रभावित करते हैं। नाइट्रोजन की अधिकता से वानस्पतिक वृद्धि का अधिक होना तथा कार्बोहाइड्रेट का कम होना अफलत को बढ़ाता है। रासायनिक पदार्थ (हार्मोन) आदि की मात्रा एवं संतुलन अनेक क्रियाओं में बाधा बनती हैं। इससे फूलों का कम बनना, फल नहीं लगना एवं फूल तथा फलों का समय से पूर्व झड़ना आदि समस्या रहती हैं। इससे फलवृक्षों पर फल नही बनते या बहुत कम अथवा पकने तक नही रूकते हैं और फलोद्यान अफलत की स्थिति में आकर अनुत्पादक हो जाता है।

3. **फलवृक्षों की विकासीय प्रवृति (Evolutionary tendencies) -** इसमें फलवृक्षों पर फूल खिलने के बाद परागण की क्रिया से लेकर फल बनने तक विभिन्न स्थितियाँ होती हैं जिसमें फूलों की संरचना, परागणकण का उर्वर होना, जननांगों का सही अवस्था में होना आदि शामिल हैं। इनमें से एक भी स्थिति विकार युक्त होने पर अफलन होता है।

(अ) अपूर्ण फूलों का बनना (Formation of degenerated flowers) : कुछ फल वृक्षों पर पूर्ण फूलों का निर्माण नही होता। जब एक ही पौधों पर मादा एवं नर फूल अलग–अलग स्थान पर उत्पन्न होते हैं ऐसी स्थिति उभयलिंगाश्रयी

(मोनोसियस) होती है जैसे कटहल। परन्तु जब नर एवं मादा फूल अलग–अलग पौधो पर उत्पन्न हो तो वह एकलिगांश्रयी (डायोसिस) कहते हैं जैसे खजूर, पपीता। ऐसे में नर फूलों या पौधो की पर्याप्त संख्या में नही होने से परागण की क्रिया पूर्ण नही हो पाती और अफलत की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(ब) जननांगों के परिपक्वता में भिन्नता (Dichogamy) : फलवृक्षों पर फूल खिलने के बाद उपस्थित जननांगों में परिपक्वता का समय अलग–अलग होता है। जैसे नर अंगो के पहले परिपक्व होने को ''प्रोटोएण्ड्री'' (सीताफल में) तथा मादा अंगो के पहले परिपक्व होने को ''प्रोटोगायनी'' (चीकू में) कहते है। ऐसी स्थिति में स्वयंसेचन के नहीं होने के कारण अफलन की स्थिति होती है।

(स) पराग का उर्वर न होना (Impotent pollen): फलवृक्षों में कभी–कभी फूल तो पूर्ण होते हैं परन्तु उनमें उपस्थित परागकण जीवनक्षम नही होते, जिससे परागण में सेंचन की क्रिया पूर्ण नही होती है और अफलत होती है, जैसे अंगूर में कुछ किस्में।

(द) विषमवर्तिकात्व (Heterostyly) : कुछ फलवृक्षों में फूल की बनावट ही विकार युक्त होती है जिसमें वर्तिका (स्टाईल), पुंकेसर तन्तु (फिलामेन्ट) से लम्बी अथवा विपरीत होती है, इससे पुष्प के स्वयं निषेचन में बाधा आती है, और फल का निर्माण नही होता है।

अफलन की समस्या का उपाय (Control measures of unfruitfulness) – निम्न उद्यानिकी क्रियाओं के द्वारा फलोद्यान की अफलन की समस्या में कमी लायी जा सकती है।

1. **पराग वाले फलवृक्ष लगाना (Pollinizers) :** जिन फलवृक्षों में पराग सेचन वाले वृक्ष कम होते है वहां पराग देने वाले वृक्षों को स्थान स्थान पर लगाना चाहिए। इनको पोलीनाइजर्स कहते है। इससे परागकण पर्याप्त मात्रा में मिलते है, और फलन भी अच्छा होता है। जैसे सेव, बेर, आम की कुछ जातियाँ एवं पपीते में नर पौधे लगाना।
2. **जड़ो की काट–छाँट (Root prunning) :** इसमें फूल आने के एक माह पूर्व फल वृक्षों के फैलाव में चारो तरफ 50–60 सेमी0 गहरी खाई खोद देते हैं। खाई पार की जडे काटकर खाद मिट्टी के मिश्रण से भर, सिंचाई करते हैं इससे कार्बोहाइड्रेट की मात्रा के बढ़ने से फसल अच्छी होती है।
3. **वलय बनाना (Ringing) :** इस क्रिया में फलवृक्षों की चयनित शाखाओं पर चारो ओर 5 सेमी. चौड़ी छाल उतार कर वलय बना देते हैं। वलय अधिक गहरी नही हो एवं लकड़ी (जाइलम) को नुकसान नही करें ऐसा करने से शाखाओं में कार्बोहाइड्रेट का स्तर बढ़कर फलत को बढ़ावा मिलता है।
4. **फलोद्यान का प्रबन्धन (Orchard management) :** फलोद्यान का अच्छा एवं वैज्ञानिक प्रबन्धन अफलत की समस्या को कम करता है। इसमें समय पर निराई–गुड़ाई, पोषण, काट–छाँट, रोग–कीटो से बचाव, पौधो को खुला बनाना आदि उद्यानिक क्रियाएँ समय पर करते रहना चाहिए। इससे उद्यान से अच्छी उपज मिलती है।
5. **उद्यान में परागण क्रिया (Pollination) :** फलवृक्षों में फूल आने के बाद परागण की क्रिया समय पर एवं अधिक हो इसके लिए पराग ले जाने वाले कीटों का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। जैसे बाग में भौरे, तितली, मधुमक्खी आदि को आकर्षित करना, इससे निषेचन की क्रिया समय पर सम्पन्न होने से अफलत दूर होती है।
6. **पादप हार्मोन का प्रयोग (Use of plant growth regulators) :** आम, नीबू आदि फलवृक्षों में हार्मोन के असंतुलन के कारण फूल एवं फल समय से पहले गिर जाते हैं। इसके लिए 2,4–D, NAA आदि वृद्धि नियामकों का छिड़काव करना चाहिए। जैसे नीबू में 2,4–D, 10 पीपीएम. का छिड़काव मई एवं सितम्बर माह में करने से फलवृक्षों से फूल एवं फल का झड़ना रूक जाता है और फलत अच्छी होती है।

9.4 फलोद्यान में विभिन्न पादप वृद्धि नियन्त्रकों का प्रयोग (Use of plant growth regulators in orchard)

पादप वृद्धि नियन्त्रक पोषक तत्व के अतिरिक्त वह कार्बनिक पदार्थ है, जिसकी सूक्ष्म मात्रा ही पौधों की कार्यिकीय क्रियाओं को नियंत्रित करती है। ऐसे पदार्थ पादप हार्मोन्स या पादप नियंत्रक या वृद्धि नियंत्रक या पादप वृद्धि पदार्थ कहलाते हैं। पादप नियंत्रको का निर्माण पौधों में विभिन्न स्थानों पर होता है तथा वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति कर पौधों की विभिन्न क्रियाओं में भाग लेते हैं। पादपों के अतिरिक्त इनका निर्माण कृत्रिम रूप से भी किया जा कर प्रयोग में लिया जाता है।

पादप वृद्धि नियंत्रकों को निम्न पाँच भागों में विभाजित किया गया है –

1.ऑक्सिन	(Auxin)
2.जिब्रेलिन्स	(Gibberellins)
3.साइटोकिनिन्स	(Cytokinins)
4.वृद्धि रोधक	(Inhibitors)

5.इथाइलीन (Ethyline)

1. **ऑक्सिन (Auxin) :** ऑक्सिन पौधों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। प्राकृतिक ऑक्सिन नयी पत्तियों एवं ऊपरी कलियों में बनते है, तथा बाद में विभिन्न स्थानों पर क्रियाओं में भाग लेते है। इनका प्रयोग पौधो मे कोशिका विभाजन, जड़ो का निर्माण, फूलों एवं फलों को गिरने से रोकना, फलों को बीज रहित बनाना, खरपतवार नियंत्रण आदि में होता है। उदाहरण – इण्डोल एसिटिक अम्ल (IAA), नेप्थेलीन एसिटिक अम्ल (NAA), इण्डोल ब्यूटाइटिक अम्ल (IBA) 2,4–डाईक्लोरोफिनाक्सी एसिटिक अम्ल (2, 4-D) आदि।
2. **जिब्रेलिन्स (Gibberellins) :** यह पौधों में निर्मित रासायनिक पदार्थ हैं, जो पौधों में कोशिका विभाजन के साथ–साथ उनका लम्बवत आकार बढाने में सहायक होता है। यह फलों का आकार बढ़ाने, फलों को बीजरहित बनाने, बीज व कलिकाओं की सुषुप्तावस्था हटाने में सहायक है। जिब्रेलिक अम्ल (GA) एक ऐसा कृत्रिम रसायन है जो जिब्रेलिन के समान ही कार्य करता है।
3. **साइटोकाइनिन्स (Cytokinins) :** यह पौधों में कोशिका विभाजन में सहायक रसायन है। बीज एवं कलिकाओं की सुषुप्ता हटाने, जड़ों, प्ररोहों तथा रेशे के निर्माण में सहायक है। काइनेटिन, जिएटिन, 6–बेन्जाइल एडिनिन आदि ऐसे प्राकृतिक एवं कृत्रिम रसायन हैं।
4. **वृद्धि रोधक (Inhibitors) :** यह वृद्धि रोधक रसायन है। जो पौधों में बीज व कलिकाओं की वृद्धि रोकना, बीज में अंकुरण रोकना, जैसी वृद्धि वाली क्रियाओं में अवरोध पैदा करता है। यह पौधों में बौनापन भी उत्पन्न करता है, जैसे मैलिक हाइड्रेजाइड (MH) ऐसा रसायन है जो प्याज के भण्डारण में अंकुरण को रोकता है।
5. **इथाइलीन (Ethylene) :** इसको फल पकाने वाले रसायन के रूप में जाना जाता है। यह गैस के रूप में कार्य करती है। तथा बहुत कम सान्द्रता में अधिक सक्रिय होता है। यह बेर, खजूर, चीकू, केला, सिट्रस आदि फलों को पकाने में सहायक है। यह फलों को पकाने के साथ पौधों की अन्य क्रियाओं में भी उपयोगी है। कृत्रिम रसायन के रूप में ईथरॉल, व्यापारिक उत्पाद ऐथ्रेल का उपयोग किया जाता है।

पादप वृद्धि नियंत्रकों का उद्यानिकी में उपयोग (Use of plant growth regulators in horticulture)

फलोद्यान में पादप वृद्धि नियंत्रको का प्रयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता है –

1. **वानस्पतिक प्रवर्धन पर प्रभाव (Effect on vegetative propogation) :** फलवृक्षों में वानस्पतिक प्रवर्धन की विधियों में, जैसे– कलम तथा दाब कलम में जड़ों को शीघ्र तथा सुगमता पूर्वक विकसित करने में हार्मोन का प्रयोग किया जाता है। अनार, अंगूर आदि की कलमों को आईबी.ए.(100–500 पी पीएम) से उपचारित करने से जड़े शीघ्र निकलती हैं। इसके अलावा मूलवृन्त एवं सायन का मिलन कराने में भी हार्मोन्स का उपयोग किया जाता है। नींबू प्रजाति में गूटी में आई.ए.ए. तथा एन.ए.ए. 100 पीपीएम का प्रयोग किया जाता है।
2. **फूलों के नियंत्रण के लिए जिब्रेलिन्स (Initiation of flowering) :** फलवृक्षों में फूलो को शीघ्र लाने, विलम्ब से या फिर अधिक फूलो को कम करने जैसी क्रियाओं में हार्मोन्स का उपयोग किया जाता है। आम, अमरूद में एन. ए.ए.(200–500 पीपीएम) का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा अमरूद एवं अनार में फूलों को कम करने (विरलीकरण) के लिए 200 पीपीएम एन.ए.ए. का उपयोग किया जाता है।
3. **फलों एवं फूलों को झड़ने से रोकने में (Effect on preharvest fruit drop) :** फलवृक्षों में फूल झड़ने एव फलों के पकने से पूर्व झड़ने से रोकने के लिए वृद्धि नियंत्रक का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है। आम नींबू, नारंगी, में एन.ए.ए, 2, 4,–D तथा जिब्रेलिक अम्ल का 15–20 पीपीएम के घोल का छिड़काव किया जाता है।
4. **फलों को पकाने में (Effect on fruit ripening) :** बाजार की मांग के अनुसार फलों को जल्दी पकाने या देर से पकाने में भी हार्मोन्स का प्रयोग किया जाता है। आम, केला, चीकू, खजूर, आदि में फलों को हार्मोन्स से पकाया जाता है। इसके लिए एथ्रेल (500–1000पीपीएम) का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इसका प्रयोग नियंत्रित मात्रा में तथा सावधानी से करना चाहिए।
5. **फल बनाने व आकार बढ़ाने पर प्रभाव (Effect on fruit setting) :** अनेक फलवृक्षों में फल लगने पर हार्मोन्स का प्रयोग कर अधिक फूलों से फल बनाये जाते हैं। जैसे आम में एन.ए.ए 10 पीपीएम के उपयोग से अधिक फल लगते हैं। नींबू व अंगूर में फलों के आकार में वृद्धि करने के लिए जिब्रेलिक अम्ल (25से 50पीपीएम) तथा एन.ए.ए का प्रयोग किया जाता है।
6. **फलों को बीज रहित बनाने में (Seedless fruits) :** कुछ फलों में गुणवत्ता सुधार के लिए बीजरहित फल तैयार करने में भी हार्मोन्स का उपयोग किया जाता है। ऐसे फल बिना निषेचन तथा परागण के तैयार होते हैं, जिससे फल बीज रहित बनता है। इसके लिए आईएए, आईबीए, आईपीए, एनएए का प्रयोग किया जाता है।

7. **खरपतवार नियंत्रण में उपयोग (Effect on weeds) :** फलोद्यान मे खरपतवार एक प्रमुख समस्या होती है। इसको निराई–गुड़ाई करने से समय, श्रम व अधिक धन खर्च होता है। परन्तु हार्मोन्स का छिड़काव कर इन पर नियंत्रण किया जा सकता है। इसके लिए 2,4–डी की 0.1 प्रतिशत की मात्रा का उपयोग चौडी पत्ती वाले खरपतवार के लिए किया जाता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त हार्मोन्स का उपयोग कलिकाओं की प्रसुप्ति समाप्त करने, बीजों को उपचारित कर अंकुरण बढ़ाने, पादप प्रजनन, भण्डारण की अवधि बढ़ाने, एकान्तरित फलन को रोकने जैसे अनेक कार्यों में सफलता पूर्वक किया जा रहा है।

पादप नियंत्रको को प्रयोग करने की विधियाँ (Methods of Application) : फलोद्यान में विभिन्न कार्यों में पादप हार्मोन्स अथवा पादप वृद्धि नियंत्रकों का प्रयोग किया जाता है। इन नियंत्रकों की यह मात्रा बहुत सूक्ष्म होती है। जिसकी सान्द्रता पीपीएम (अर्थात एक भाग रसायन प्रति दस लाख भाग पानी) में व्यक्त की जाती है। इसलिए इतनी सूक्ष्म मात्रा की सान्द्रता वाला घोल बनाने या प्रयोग करने में अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। जब एक मिली या मिलीग्राम पादप नियंत्रक रसायन को एक लीटर पानी में घोला जाता है, तब एक पीपीएम की सान्द्रता का घोल तैयार होता है। ये पादप वृद्धि नियंत्रक विभिन्न रासायनिक प्रकृति के होने के कारण सीधे पानी में नहीं घुलते हैं। अतः इनका घोल बनाने के लिए पहले इनको एल्कोहल या अमोनियम हाइड्रॉक्साइड या अमोनिया विलयन की अल्प मात्रा में घोल कर परिशुद्ध पानी में मिलाते हैं।

पादप नियंत्रकों की प्रयोग विधियाँ निम्न हैं –

1. **घोल के रूप में (Liquid form)** – सान्द्रता के अनुसार यह दो प्रकार से प्रयोग किया जाता है।
   - **(अ) अधिक समय के लिए डुबोना**– इसमें कम सान्द्रता (25–50 पीपीएम) के घोल में कलमों के निचले सिरो को 24 घण्टो के लिए डुबाकर प्रयोग लिया जाता है।
   - **(ब) कम समय के लिए डुबोना** – इसमें अधिक सान्द्रता (500–2000 पीपीएम) के घोल में कलमों के निचले सिरे को कम समय (सेकण्ड से मिनट तक) के लिए डुबोकर प्रयोग लिया जाता है।
2. **छिड़काव के रूप में (Spray method)** – फलवृक्षों पर विभिन्न उपयोगों के लिए वांछित सान्द्रता का घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है।
3. **पाउडर के रूप में (Powder form)** – इसमें कलमों के निचले सिरे को गीला कर पाउडर में मिश्रित रसायन से उपचारित किया जाता है। इसके लिये सेरेडेक्स रूटेक्स आदि रसायन तैयार स्थिति में उपलब्ध होते है।
4. **पेस्ट के रूप में (Paste form)** – इस विधि में रसायन के चूर्ण को लिनोलिन या अन्य जेल में मिलाकर प्रयोग लिया जाता है।
5. **वाष्प के रूप में (Vapour form)** – ग्रीन हाऊस जैसे बन्द स्थान में रसायन को किसी गर्म प्लेट पर डालकर वाष्प के रूप में उपचारित करते हैं।
6. **ऐरोसोल के रूप में (Aerosol form)** – रसायन को बारीक छिद्र वाले नोजल लगे पम्प में भरकर दबाव से छिड़काव करते है। इसमें रसायन वाष्प के रूप में निकल कर कार्य करता है।
7. **इंजेक्शन के रूप में (Injecton form)** – रसायन के घोल को इंजेक्शन में भरकर फलवृक्षों के विशेष भाग पर प्रयोग करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक –

1. शुष्क एवं गर्म जलवायु के लिए उपयुक्त फल है–
   (अ) बेर (ब) आम
   (स) अंगूर (द) सेव
2. फलवृक्षों के लिए भूमि की गहराई होनी चाहिए–
   (अ) 4.5 मी. (ब) 3 मी.
   (स) 2 मी. (द) 1 मी.
3. पंचभुजाकार विधि में पूरक पौधों के लिए उपयुक्त है–
   (अ) आम (ब) पपीता
   (स) खजूर (द) नींबू
4. पपीता का पौध रोपण का अन्तर है–
   (अ) 6×6 मी. (ब) 5×5 मी.
   (स) 3×3 मी. (द) 7×7 मी.
5. बाग लगाने के लिए सिंचाई की उपयुक्त विधि है–
   (अ) प्रवाह विधि (ब) ड्रिप पद्धति
   (स) नालियाँ बनाकर (द) वलय विधि
6. पाले से बचाव के लिए गंधक के घोल की सान्द्रता होती है।
   (अ) 1% (ब) 3%
   (स) 1.5% (द) 0.1%
7. ठण्डी हवाओं से बचाव के लिए वायुरोधी वृक्ष लगाते हैं।
   (अ) पूर्व में (ब) पश्चिम में
   (स) उत्तर में (द) दक्षिण में
8. ''लू'' कहलाती है –
   (अ) अत्यधिक गर्म हवा (ब) सामान्य हवा
   (स) ठण्डी हवा (द) गर्म हवाएं

9. फलवृक्षो के तनो पर सफेद चूना से बचाव होता है–
(अ) ठण्ड से (ब) लू से
(स) वर्षा से (द) रोगो से

10. पलवार (मल्चिंग) से बचाव होता है–
(अ) रोग का (ब) कीट का
(स) नमी का (द) कोई नही

11. नीबू में फलो को गिरने से रोकता है।
(अ) 2,4–D (ब) आई.ए.ए.
(स) आई.बी.ए. (द) सेरेडेक्स

12. निम्न में से फलत के लिये उपयुक्त है–
(अ) फॉस्फोरस (ब) नाइट्रोजन
(स) प्रोटीन (द) कार्बोहाइड्रेट

13. प्रोटोगायनी सम्बन्धित है –
(अ) पुष्प (ब) जड़
(स) तना (द) पत्ती

14. निम्न में से काट–छाँट अति आवश्यक है –
(अ) पपीता (ब) आम
(स) अमरूद (द) बेर

15. पोलीनाइजर्स है –
(अ) कीट (ब) फल वृक्ष
(स) रोग (द) वायुरोधी

16. वृद्धि निरोधक पादप नियन्त्रक है –
(अ) 1AA (ब) NAA
(स) ABA (द) 1BA

17. 2, 4– डी है –
(अ) वृद्धि कारक (ब) रोग नाशक
(स) कीट नाशक (द) कवक नाशक

18 भण्डारण में प्याज को उपचारित करते हैं –
(अ) MH (ब) 1BA
(स) 2,4-D (द) GA_3

19. जड़ उत्पत्ति वाला हार्मोन है –
(अ) GA_3 (ब) 1AA
(स) 1BA (द) काइनेटीन

20. फूल आने के लिए एनएए की सान्द्रता है –
(अ) 20 पीपीएम (ब) 30 पीपीएम
(स) 40 पीपीएम (द) 50 पीपीएम

अतिलघूत्तरात्मक–

21. फलोद्यान के लिए स्थान का चुनाव के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के नाम लिखिए।
22. वायुरोधी वृक्षों की सूची बनाइये।
23. प्रतिकूल मौसम से क्या तात्पर्य है?
24. पाला या तुषार की परिभाषा लिखिए।
25. ''स्वबंध्यता'' का उदाहरण वाले फलवृक्ष का नाम लिखिए।
26. अफलन के दो बाहय प्रमुख कारकों के नाम लिखिए।
27. पौधों में वृद्धि एवं फलन के लिए एक कारक का नाम लिखिए।
28. आईबीए रसायन का मुख्य उपयोग लिखिए।

लघूत्तरात्मक

29. उद्यान मे बाग लगाने की विभिन्न विधियों का सचित्र वर्णन कीजिए।
30. लू से फलवृक्षों पर क्या प्रभाव होता है?
31. पाले से बचाव के कोई तीन उपाय बताइये?
32. अफलन में काट–छाँट का महत्त्व लिखिए।
33. अफलत को दूर करने में पादप हार्मोन का प्रयोग लिखिए।
34. प्रवर्धन में पादप नियंत्रकों का उपयोग लिखिए।
35. पादप वृद्धि नियन्त्रकों का वर्गीकरण कीजिए।

निबन्धात्मक

36. प्रतिकूल मौसम फलोद्यान को कैसे नुकसान करता है?इससे बचाव के उपायों का उल्लेख कीजिए।
37. अफलन एवं अनुत्पादकता में अन्तर करिए ?अफलन के बाह्य कारकों का वर्णन करते हुए, उपायों को सूचीबद्ध कीजिए।
38. पादप वृद्धि नियंत्रक की परिभाषा लिखिए। उद्यानिकी में अधिक उपज के लिये इसकी भूमिका का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

(1) अ	(2) स	(3) ब	(4) स	(5) ब
(6) द	(7) स	(8) अ	(9) ब	(10) स
(11) अ	(12) द	(13) अ	(14) द	(15) ब
(16) स	(17) द	(18) अ	(19) स	(20) अ

अध्याय–10
फलोत्पादन
(Fruit Production)

आम *(MANGO)*

वानस्पतिक नाम *(Botanical name)* **:मैंजीफेरा इंडिका एल.** *(Mangifera indica L.)*

कुल *(Family)* **: एनाकार्डिएसी** *(Anacardiaceae)*

गुणसूत्र संख्या *(Chromosome no.)* **:** $2n = 4x = 40$

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) **: भारत–बर्मा** (Indo Burma)

फल प्रकार (Fruit Type) **: अष्ठिल** (Drupe)

खाया जाने वाला भाग (Edible part) **: मध्य फल भित्ती** (Mesocarp)

हमारे देश में उगाये जाने वाले फलों में आम सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसी कारण इसे फलों का राजा कहा जाता है। इसका फल विटामिन 'ए' (4800 आई.यू.) का श्रेष्ठ स्रोत है। ताजा फल के उपयोग के अलावा इसका उपयोग अचार, अमचूर, चटनी, स्क्वेश तथा मुरब्बा आदि उत्पाद बनाने में भी किया जाता है। आम उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & Soil)

आम के लिये उष्ण व उपोष्ण जलवायु उपयुक्त मानी गई है। इसके लिये वे क्षेत्र सर्वाधिक उपयुक्त हैं जहाँ जून से सितम्बर तक पर्याप्त वर्षा होती है तथा पुष्पन व फलन के समय मौसम साफ रहता हो। आम की वृद्धि के लिये 24–27° से. तापक्रम सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। बहुत कम व अधिक वर्षा वाले स्थान आम की खेती के लिये उपयुक्त नहीं माने जाते हैं।

आम की उचित बढ़वार एवं फलन के लिये जीवांशयुक्त गहरी बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, उपयुक्त रहती है। ऐसी भूमि जिसके 2 मीटर गहराई तक अवरोध न हो आम उत्पादन के लिये अच्छी रहती है। भूमि का पी. एच. मान 6.5 से 7.5 होना आम उत्पादन के लिये उत्तम रहता है। चूनायुक्त, कंकरीली, पथरीली व ऊसर भूमि इसकी खेती के लिये अनुपयुक्त रहती है।

उन्नत किस्में (Improved Varieties): उत्तरी भारत में

अगेती – बाम्बे ग्रीन (सरोली) व केसर

मध्यम – लंगड़ा, दशहरी, मल्लिका व आम्रपाली

पिछेती – चौसा व फजली

अन्य किस्मों में पूसा अरूणिमा, पूसा सूर्या, पूसा लालिमा, पूसा श्रेष्ठा, पूसा प्रतिभा व पूसा पीतांबर किस्में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली तथा अम्बिका व अरूणिका, सी. आई.एस.एच., लखनऊ से विकसित की गयी हैं। भारत से निर्यात अल्फान्सो (हापुस) किस्म का तथा अधिकतम उत्पादकता वाली किस्म तोतापुरी (बैंगलोरा) है। सिन्धू नामक आम की संकर किस्म (रत्ना X अल्फान्सो) लगभग बीज रहित (6 ग्राम की अवशेष मात्र गुठली) होती है जिसे फल अनुंसधान केन्द्र, वैनगुरला, बी.एस.के. वी. दापोली (महाराष्ट्र) ने विकसित की है।

प्रवर्धन (Propagation)

आम को बीज व वानस्पतिक विधियों द्वारा प्रवर्धित किया जा सकता है। आम की व्यावसायिक किस्में एकल भ्रूणता (monoembryony) वाली तथा मूलवृन्त के रूप में उपयोग में आने वाली किस्में बहुभ्रूणता (Polyembryony) वाली हैं जैसे चन्द्र किरण, मूलगोवा, ओल्यूर, बप्पाकाई, एम 13–1, वल्लाईकोल्मबन जो बौनापन व लवणीय सहनशीलता दर्शाती हैं। अच्छे गुणों वाले इच्छित पौधे तैयार करने के लिए वानस्पतिक विधियों का ही प्रयोग किया जाता है। इन विधियों में इनार्चिंग, वीनियर ग्राफ्टिंग, सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग एवं स्टोन ग्राफ्टिंग प्रमुख है। यहाँ वीनियर व स्टोन ग्राफ्टिंग का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

वीनियर ग्राफ्टिंग : यह आम के प्रवर्धन की सरल विधि है एवं व्यावसायिक तौर पर अपनायी जा सकती है। वीनियर ग्राफ्टिंग के लिए मूलवृन्त इनार्चिंग के समान ही तैयार किये जाते है। इसके लिए मूलवृन्त में 20 सेमी. ऊँचाई के निचले हिस्से पर 3–4 सेमी. लम्बा चीरा लगावें। चीरे के आधार पर एक आड़ा चीरा और लगावें जिससे कटा हुआ लकड़ी का टुकड़ा बाहर आ जाए। सांकुर शाखा पर एक तरफ लम्बा कलम के आकार का चीरा लगावें तथा दूसरी तरफ छोटा कट लगावें। मूलवृन्त मे कटी

सांकुर शाखा को ठीक से बैठा देवें तथा पॉलीथीन की पट्टियों (200 गेज) से बाँध देवें। मूलवृन्त का ऊपरी भाग लगभग

10 दिन बाद काट देवें। वीनियर ग्राफ्टिंग करने का कार्य भी इनार्चिंग की तरह जुलाई माह में ही उपयुक्त रहता है।

कलम बंधन हेतु वांछित किस्म की 5–6 माह पुरानी स्वास्थ्य शाखाओं (प्ररोह) का उपयोग करना चाहिए। सांकुर शाख की पत्तियों को कलम बांधने के एक सप्ताह पूर्व डण्ठल छोड़ते हुए हटा दिया जाता है। सांकुर प्ररोह जिनमें शीर्ष कलिका फूल गयी हो (फूटने से पूर्व स्थिति में) मातृ वृक्ष से प्रातः अथवा सायंकाल में एकत्रित कर लेनी चाहिए। इस सांकुर शाख को अखबार में या किसी अन्य पेपर में लपेट कर टाट के टुकड़े में रख कर पानी का ऊपर से छिड़काव कर नम बनाये रखते हैं तथा इनका उपयोग कलम बंधन के लिए कर सकते हैं।

- स्टोन या इपिकोटाइल ग्राफ्टिंग :– इस विधि में गुठली के अंकुरित होते ही 8–15 दिन के अन्दर बीजू पौधे वाले मूलवृन्त में लगभग इसी मोटाई की सांकुर को वेज (खूँटें) का आकार बनाते हुए तथा मूलवृन्त में इसे लगाने हेतु चीरा लगाकर फँसा दिया जाता है। सफल कलम 2–4 सप्ताह में बढ़वार शुरू कर देती है। महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र की प्रचलित विधि हैं।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

उन्नत विधियों द्वारा प्रवर्धित किये गये पौधों का वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) में रोपण किया जाना चाहिए। उद्यान भूमि को समतल कर रोपाई के एक माह पूर्व 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे 10×10 मीटर की दूरी पर खोदकर उन्हे खुला छोड़ देवें। प्रत्येक गड्ढे में 25 किलो सड़ी हुयी गोबर की खाद एक किलोग्राम सुपर फास्फेट तथा 50–100 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा पुनः भर देवें। संकर किस्मों को कम दूरी पर भी लगाया जा सकता है (आम्रपाली या अन्य बौनी किस्म को 2.5× 2.5 मीटर की दूरी पर तथा दशहरी को सघन बागवानी हेतु 5.0×5.0 मीटर अन्तराल)।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

आम की उचित बढ़वार के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद, उर्वरक एवं अन्य पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक होता है। अधोलिखित तालिका के अनुसार आम के वृक्षों में खाद देनी चाहिए। गोबर की खाद को दिसम्बर तथा सुपर फॉस्फेट व म्यूरेट ऑफ पोटाश को जनवरी माह में देना चाहिए जबकि नत्रजन की आधी मात्रा फूल आने के बाद व शेष आधी मात्रा फल तोड़ लेने के बाद देनी चाहिए। जस्ते की कमी होने पर 0.3 प्रतिशत जिंक सल्फेट के तीन छिड़काव पुष्पन के पश्चात् करना चाहिए। (सारणी 10.1)

सारणी 10.1 : खाद एवं उर्वरक

खाद व उर्वरक	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष व बाद में	देने का समय
गोबर की खाद	15	30	45	60	75	दिसम्बर
सुपर फॉस्फेट	0.25	0.50	0.75	1.00	1.00	जनवरी
म्यूरेट ऑफ पोटाश	–	–	–	0.25	0.50	जनवरी
यूरिया	0.25	0.75	0.75	1.00	1.25	आधा भाग फूल आने के बाद (मार्च) व शेष जून

कटाई–छँटाई (Training & pruning) : पौधों को उचित आकार देने हेतु कटाई–छँटाई अति आवश्यक है। यदि पेड़ की शाखाएँ अधिक नीचे से निकल रही हों तो उसे कटाई–छँटाई द्वारा हटा देना चाहिए। पौधे को सही आकार देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य तने से 75–100 सेमी. ऊँचाई तक शाखाएँ नहीं निकले और आगे अलग–अलग दिशाओं में मुख्य शाखाओं के बीच में 20 से 25 सेमी. का अन्तर रहे। ऐसी शाखाएँ जो आपस में एक–दूसरे के समानान्तर जा रही हों काट देनी चाहिए।

सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई (Irrigation & interculture) : आम के बाग में वर्षा ऋतु को छोड़कर गर्मियों में प्रति सप्ताह तथा शीत ऋतु में 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिये परन्तु नये लगाये गये पौधों को (बरसात छोड़कर) 3–4 दिन के अन्तराल पर सींचना चाहिए। फल बनते समय भूमि में पर्याप्त नमी होना आवश्यक होता है परन्तु फूल आने से फल बनने तक सिंचाई नही करनी चाहिए।

आम के बगीचों को खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए व भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने के लिए निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। आम के बगीचों में प्रतिवर्ष 2–3 जुताई करके खरपतवार रहित कर देना उपयुक्त रहता है। आम के बगीचे में प्रारम्भिक 3–4 वर्ष तक अन्तःफसलें उगायी जा सकती हैं। अन्तःफसल उगाने से कृषकों को

अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होने के साथ–2 आम के पौधे का रखरखाव भी अच्छी तरह से हो जाता है। अंतः फसल हेतु हो सके तो दलहनी फसलों का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए ग्वारफली, लोबिया, मूंग, उड़द, मटर, चना (दलहनी फसलें), सब्जियों में पत्तागोभी, फूलगोभी, टमाटर, बैंगन, भिण्डी आदि तथा फूलों में गेंदा, रजनीगंधा, ग्लैडियोलस, मसालों में मिर्च, हल्दी, प्याज, लहसुन एवं अदरक आदि अन्तः फसल के रूप में ली जा सकती हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection)

आम की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियों मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – (सारणी 10.2)

कार्यिकीय विकार (Physiological disorder)

- **पुष्पशीर्ष विकृति (मेंगों मालफोर्मेशन) या गुच्छा–मुच्छा रोग :** इस रोग से प्रभावित पत्तियाँ एवं पुष्पक्रम गुच्छों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं व पौधे की बढ़वार रूक जाती है तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अभी तक इस रोग के स्पष्ट कारणों का पता नही चल सका है। अतः इसे कवक, माइट कीट, हार्मोन असंतुलन व वातावरणीय कारक से होने वाला विकार मानते हैं, परन्तु इसके प्रभाव को कम करने के लिए रोगी भाग को नष्ट करने के साथ 200 पी.पी.एम. अल्फा–नेफ्थेलीन एसीटिक अम्ल का छिडकाव सितम्बर–अक्टूबर माह मे करना चाहिये तथा शीघ्र आने वाले (अगेती) पुष्पक्रम को तोड़ देना चाहिए।
- **ब्लैक टिप :** यह व्याधि आम के उन बगीचों में पाई जाती है जो ईंट के भट्टों के 600 मीटर के क्षेत्र में हों। क्योंकि भट्टों से निकलने वाली विषाक्त गैसें जैसे कार्बन मोनो–ऑक्साइड, एसिटाइलीन, सल्फर डाईऑक्साइड आदि इस विकार के कारक हैं। इससे बचाव के लिये आम के बाग ईंट के भट्टों से दूर लगायें तथा भट्टों की चिमनियाँ ऊँची होनी चाहिये साथ ही कास्टिक सोड़ा (0.8%) या पोटेशियम हाइड्रोक्साइड (0.5%) या बोरेक्स (1%) का छिड़काव लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

सारणी 10.2 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट– मिली बग (*Drosicha mangiferae*)	इस कीट के निम्फ मुलायम टहनियों, पुष्पक्रम तथा छोटे फलों के डण्ठलों पर एकत्रित होकर रस चूसते है।	पेड़ के तने के चारों ओर पोलीथीन की ग्रीस लगी 30–40 सेमी. चौड़ी पट्टी जमीन से 60 सेमी. की ऊँचाई पर लगाये। दिसम्बर माह में खेत की जुताई करें।यदि पेड़ पर मिली बग चढ़ गयी हो तो इमिडाक्लोप्रिड 30.5 एस.सी 1–1.5 मिली दवा प्रति 3 लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
2	आम का फुदका (*Hopper*) (*Amiritodus atkinsoni*)	सर्वाधिक नुकसान पहुँचाने वाला भूरे रंग का बहुत ही छोटा कीट (वयस्क व निम्फ) होता है व आम के फूल, छोटे फल तथा नई वृद्धि का रस चूसता है।	इमिडाक्लोरप्रिड–17.5 एस.एल. दवा 1 मिली प्रति तीन लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें
3	छाल भक्षक कीट (*Inderbela sp.*)	कीट की इल्ली (Caterpillar) तने में छेद कर छाल को खाती रहती है। तने एंव शाखाओं में सुरंग बना कर वृक्ष को खोखला बना देता है।	रूई को पेट्रोल या केरोसीन या कीटनाशी (क्यूनॉलफॉस–25 ईसी) रसायन में भिगोकर कीट की सुरंगो के अन्दर भर देना चाहिए तथा ऊपर से चिकनी मिट्टी लगा देवें।
4	व्याधि –चूर्णी फफूंद (*Oidium mangiferae*) कवक	टहनियों, पत्तियों व पुष्पक्रमों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है।	घुलनशील गंधक 2.5 ग्राम या कैराथेन 1 मिली. प्रति लीटर पानी में घोलकर दो बार छिड़काव करना चाहिए।
5	श्यामव्रण (*Colletotrichum sp.*) कवक	पत्तियों पर भूरे व काले फफोलेनुमा धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियाँ गिरने लगती हैं।	कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तथा रोग ग्रस्त टहनियों व पत्तियों को काट कर नष्ट कर देवें।

- **स्पंजी उत्तक :** अल्फान्सो आम की मुख्य समस्या है। कारण : उष्ण क्षेत्रों में भूमि के ताप संवहन से फलों की मध्य फल भित्ति में एमाइलेज एन्जाइम अक्रिय हो जाता है तथा उत्तकों में हवा भर जाती है जिससे फल गल जाता है। इन क्षेत्रों में आम में पलवार (मल्चिंग) तथा 75% परिपक्वता पर तुड़ाई के साथ–2 कैल्शियम क्लोराइड (0.8%) का छिड़काव कारगर रहता है।
- **एकान्तर फलन :** प्रायः आम की फसल में ऐसा देखा गया है कि पूर्ण विकसित आम के वृक्ष एक वर्ष अच्छी उपज देते हैं व दूसरे वर्ष उपज बहुत कम या नहीं होती है। आम के वृक्षों की इस प्रकार की प्रवृत्ति को एकान्तर फलन (Alternate or biennial bearing) कहते हैं। जिस वर्ष अच्छी उपज होती है उसे "ऑन इयर" कहते हैं तथा जिस वर्ष उपज बहुत कम या नही होती है उस वर्ष को "ऑफ इयर" कहते हैं। दशहरी, लंगड़ा, अल्फांसो आदि प्रतिवर्ष फल नहीं देती है। कुछ व्यवसायिक किस्मों का आनुवांशिक गुण है यद्यपि नीलम, बैंगलोरा आदि प्रतिवर्ष फल देती हैं किन्तु इनकी गुणवत्ता स्तरीय नहीं होती।

नियंत्रण के उपाय –

1. उचित समय पर खाद, उर्वरक एवं वृद्धि नियंत्रकों का प्रयोग तथा सिंचाई, निराई, गुड़ाई तथा कीट एवं व्याधियों पर नियंत्रण से अनियमित फलन की समस्या को कम किया जा सकता है।
2. नियमित फल देने वाली किस्में जैसे आम्रपाली, मल्लिका, रत्ना आदि किस्मों का रोपण करना चाहिए।
3. कुछ शाखाओं के फूल फल बननें से पूर्व ही तोड़ दिये जाए तथा शेष को फलने दिया जाए तो अगले वर्ष जिनमें फलन नही लिया गया है उनमें फलन होगा तथा उत्पादन में प्रतिवर्ष सन्तुलन बना रहेगा।
4. सितम्बर अक्टूबर माह में पेक्लोब्यूट्राजोल (5–10 ग्राम/वृक्ष) मृदा में मिलाने से "ऑफ इयर" में भी फल बननें की संभावना रहती है।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

आम की परिपक्वता 75 प्रतिशत होने पर तुड़ाई प्रातः 7–11 बजे तथा अपराह्न 3–7 बजे के मध्य की जाये। फलों को एक जैसा पकाने हेतु 100–500 पी. पी. एम. इथरेल गुनगुने पानी के घोल में 5 मिनट तक उपचारित कर छाया में सुखाया जाये।

आम के एक वयस्क पौधे से 80 से 100 किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते है वैसे पैदावार पेड़ की उम्र, किस्म तथा बगीचे की देखभाल पर भी निर्भर करती है। राष्ट्रीय स्तर पर इसकी प्रति हेक्टेयर उपज 8–9 टन तक होती है। इसके फलों को 5–16 डिग्री सेल्सियस तापक्रम व 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 2–3 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

नींबू (Lime)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name) :
सिट्रस ऑरेन्टीफोलिया स्विंगल
***(Citrus aurantifolia* Swingle.)**
कुल (Family) : रूटेसी (Rutacae)
गुणसुत्र संख्या (Chromosome No.) : X = 9 2n = 18
फल प्रकार (Fruit type) : हेस्पेरीडियम सरस (Berry)
खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
रसीले प्लेसेन्टल रेशे
उद्गम स्थल (Centre of origin) : भारत (India)

नींबू सम्पूर्ण भारत में उगाया जाता है तथा नींबू वर्गीय फलों में संतरा तथा मौसमी के बाद तीसरा मुख्य फल है। विश्व में भारत नींबू उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है। इसे आंध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में प्रमुखता से उगाया जाता है।

जलवायु व भूमि (Climate & Soil) :

नींबू की खेती उष्ण से शीतोष्ण जलवायु तक सफलतापूर्वक की जा सकती है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र जहाँ पानी की सुविधा हो, इसकी खेती के लिए उत्तम रहते हैं। इसकी फसल बागवानी के लिये उपयुक्त तापक्रम 16 से 32° से. है। राजस्थान के उन भागों में जहाँ पाला कम पड़ता है तथा वातावरण नम व जाड़े की ऋतु लम्बी होती है, वहाँ इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है।

नींबू की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है किन्तु उपजाऊ दोमट भूमि सर्वोतम मानी गयी है। भूमि जीवांश युक्त व 2 मीटर गहरी होनी चाहिए। अधिक रेतीली व चिकनी मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नहीं रहती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

उन्नत किस्में (Improved Varieties) :

भारत में उगाई जाने वाली विभिन्न किस्मों में कागजी, कागजी कलाँ, बारहमासी नींबू, इन्दौर सीडलैस, पन्त लेमन–1

सारणी 10.3 : खाद एवं उर्वरक

पौधे की आयु (वर्ष)	गोबर की खाद (किग्रा.)	यूरिया (ग्राम)	सुपर फॉस्फेट (ग्राम)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम)
1	10	125	250	–
2	20	250	500	–
3	30	375	750	200
4	40	500	1000	200
5	50	625	1250	400

आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कई नयी किस्में जैसे विक्रम व प्रमालिनी (एमएयू, परभनी (महाराष्ट्र) सई शर्बती (एमपी के वी, राहुरी) तथा जयदेवी (तमिलनाडू) व तेनाली (आन्ध्रप्रदेश) आदि विकसित की गयी हैं जो अधिक उपज तथा उत्तम गुणवत्ता वाली हैं।

प्रवर्धन (Propagation) :

नींबू का प्रवर्धन बीज व गूटी दाब विधियाँ व्यावसायिक तौर पर अपनायी जाती है।

पौध रोपण विधि (Planting methods) :

नींबू के पौधे लगाने के लिए मई–जून के महीने में 75×75×75 सेमी. आकार के गढ्ढे 5-6×5-6 मीटर की दूरी पर खोदे जाते हैं। उक्त गड्ढों को 10–15 दिन छोड़ने के बाद प्रत्येक गड्ढे में 20 किलोग्राम गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर मिट्टी के साथ मिलाकर पुनः भर देना चाहिए। जुलाई–अगस्त माह में तैयार गड्ढों में पौधे लगाना उपयुक्त रहता है पौधा रोपण के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करें।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) :

नींबू के पौधों को सारणी 10.3 के अनुसार खाद व उर्वरक देवें–

देशी खाद, सुपर फॉस्फेट तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा व यूरिया की आधी मात्रा फूल आने के 6 सप्ताह पूर्व देवें। यूरिया की शेष आधी मात्रा फल बनने पर देवें।

सिंचाई :

वर्षा ऋतु में प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। नींबू में सर्दी में 25 दिन के अन्तराल पर व गर्मी में 15 दिन के अन्तराल में सिंचाई करनी चाहिए। फूल खिलने के समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूल झड़ने की सम्भावना रहती है।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning) :

प्रारम्भिक अवस्था में निश्चित आकार प्राप्त करने के लिये कटाई–छँटाई करनी चाहिए। साधारणतः नींबू में किसी विशेष कटाई–छँटाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु वर्ष में एक बार रोग ग्रसित, सूखी व एक दूसरे में फसी शाखाओं की कटाई–छँटाई करना चाहिए। तथा नियमित अन्तराल पर जड़ क्षेत्र से काट–छाँट (Root-pruning) दिसम्बर–जनवरी माह में करने पर फरवरी–मार्च में पुष्पन अच्छा होता हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection) : कीट प्रबन्ध (Insect management)

1. नींबू की तितली (Lemon butterfly-*Papilio demoleus* - इस के डिम्भ (Larvae) नर्सरी में व नये पौधों की नयी पत्तियों को खाकर काफी क्षति करते हैं। आरम्भ में ये चिड़ियों के विष्ठा (बीट) की तरह होते हैं जो बाद में बढ़कर 5.0 सेमी लम्बे तथा पत्तियों की भाँति हरे रंग के हो जाते है। इन कीटों से सबसे अधिक क्षति अप्रैल–मई तथा अगस्त से अक्टूबर माह में होती है इसके नियंत्रण हेतु डाइमिथोएट–30 ईसी दवा 1–1.5 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

2. पर्ण सुरंगी (Leaf minor-*Phyllocnistis citrella*)– इसके लार्वा पत्तियों में अनियन्त्रित आकार की सुरंगे बनाते हैं जो मुख्यतः कोमल पत्तियों पर आक्रमण करते हैं तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है साथ ही ये सिट्रस केंकर रोग का भी वहन करते हैं। इसके नियंत्रण हेतु जब पेड़ो में नये फुटान हो रहे हो तो इन पर (फरवरी–मार्च व मई–जून) डाइमिथोएट–30 ईसी दवा 1–1.5 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करके नियंत्रण किया जा सकता है।

व्याधि प्रबंध (Disease management) :– नींबू का केंकर (Citrus canker) यह रोग एक जीवाणु (*Xanthomonas campestris* pv. *citri*) से होता है। इस रोग में पत्तियों, टहनियों व फलों पर हल्के पीले धब्बे दिखाई देने लगते हैं जो बाद में भूरे और खुरदरे व कॉर्कनुमा हो जाते हैं। कागजी नींबू सर्वाधिक प्रभावित होता है नया बाग हमेशा स्वस्थ पौधों से लगायें तथा रोग के फैलाव को कम करने हेतु पर्ण सुरंगी कीट का नियंत्रण करें तथा कटाई–छँटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2.5–3 ग्राम/लीटर) के साथ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (250 से 500 पीपीएम) की दर से घोल बनाकर मार्च माह में छिड़काव की संस्तुति की जाती है।

उपज एवं भण्डारण (Harvesting and yield) : नींबू का पौधा 3–4 वर्ष की आयु के पश्चात् फल देने योग्य हो जाता है। फलों की तुड़ाई पूर्ण परिपक्व अवस्था में करनी चाहिए। नींबू का रंग हल्का पीला हो जावे तब उन्हें तोड़ लेना चाहिए। पूर्ण विकसित पौधे से लगभग 1000 फल प्रति पौधा व औसतन 50–75 किग्रा प्रति पौधा उपज प्राप्त होती है। नींबू के फलों को 8–10 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 3–6 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

संतरा (Mandarin)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : सिट्रस रेटिकुलाटा बाल्कों (*Citrus reticulata* Balnco.)

कुल (Family) : रूटेसी (Rutaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : X=9 2n=18

फल प्रकार (Fruit type) : हेस्पेरिडियम सरस (Berry)

खाये जाने वाला भाग (Edible part): रसीले प्लेसेन्टल रेशे

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : दक्षिणी चीन (South China)

भारत में नींबू प्रजाति के फलों में संतरे का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है इसे मेन्डरिन भी कहते हैं। इसका छिलका फाँकों से चिपका नहीं रहता है अतः आसानी से छीला जा सकता है (Loose Skin orange)। संतरा अपनी सुगंध व स्वाद के लिए प्रसिद्ध है। इससे विटामिन 'सी', 'ए' व 'बी' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका पानक (Squash) बहुत लोकप्रिय उत्पाद है।

जलवायु व भूमि (Climate & soil) : संतरा उष्ण व उपोष्ण जलवायु का पौधा है। जिन क्षेत्रों में वर्षा 75 से 100 सेमी. होती है वहाँ पर इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। संतरे के लिए वातावरण में अधिक आर्द्रता होनी चाहिए। अतः इसकी खेती के लिए गर्म एवं नम जलवायु आदर्श है। इसके लिए 23 से 40° सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त रहता है। भारत में संतरा की खेती के लिये नागपुर (महाराष्ट्र) विख्यात है।

संतरे की खेती सभी प्रकार की अच्छे जल निकास वाली जीवांश युक्त भूमि में की जा सकती है, परन्तु गहरी दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोतम मानी जाती है। भूमि की गहराई 2 मीटर होनी चाहिये। मृदा का पी.एच. 6 से 8 उचित रहता है। इसकी सफलतम खेती के लिये अवमृदा कंकरीली, पथरीली व कठोर नहीं होनी चाहिये।

उन्नत किस्में (Improved varieties) : भारत में उगाई जाने वाली किस्मों में नागपुरी संतरा, खासी संतरा, कुर्ग संतरा, दार्जिलिंग संतरा, लाहौर लोकल आदि प्रमुख हैं। भारतीय संतरा में नागपुर संतरा सर्वोपरि है एवं विश्व के सर्वोतम संतरा में इसका स्थान है। किंग (*Citrus nobilis*) तथा विलोलीफ (*Citrus deliciosa*) के संकरण से तैयार 'किन्नों' किस्म पंजाब व राजस्थान में व्यावसायिक महत्व की किस्म है।

प्रवर्धन (Propagation) : संतरे का वानस्पतिक प्रवर्धन कलिकायन (शील्ड व पैच) विधि द्वारा किया जाता है। कलिकायन के लिये मूलवृन्त के रूप में जट्टी खट्टी (सीट्रस जम्भिरी), रंगपुर लाइम, क्लिओप्टरा मेन्डेरिन, ट्रायर सिट्रेन्ज तथा करना खट्टा काम में लेते हैं। मूलवृन्त फरवरी–मार्च माह में तैयार किये जाते है,जिन पर कलिकायन सितम्बर–अक्टूबर व फरवरी–मार्च में किया जाता है।

पौध रोपण विधि (Planting method) : कलिकायन किये गये पौधे दूसरे वर्ष जब लगभग 60 सेमी. के हो जाये तो पौधारोपण हेतु उपयुक्त माने जाते हैं। संतरे के पौधे लगाने के लिए 90 घन सेमी. आकार के गड्ढे मई–जून में 6×6 मीटर की दूरी पर खोदे जाते हैं। उत्तरी भारत में पौध लगाने का समय जुलाई–अगस्त है तथा पौध लगाने से पूर्व प्रत्येक गड्ढे को 20 किलोग्राम गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सुपर फास्फेट व मिट्टी के मिश्रण से भरना चाहिए। दीमक के नियंत्रण के लिए क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 50–100 ग्राम प्रति गड्ढा देना चाहिए।

सारणी 10.4 : खाद एवं उर्वरक

पौधे की आयु	गोबर की खाद (किग्रा.)	यूरिया (ग्राम)	सुपर फॉस्फेट (ग्राम)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम)
एक वर्ष	15	125	250	–
दो वर्ष	30	250	500	–
तीन वर्ष	45	375	750	200
चार वर्ष	60	500	1000	200
पाँच वर्ष	75	625	1250	400

सारणी 10.5 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट–नाशीजीव / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–फल चूसक शलभ (Fruit sucking moth) (*Eudocima sp.*)	रात में सक्रिय रहते हैं तथा फलों का रस चूसते हैं वहाँ से कवक आदि के संक्रमण में फल सड़कर गिर जाते हैं। वर्षा काल में अधिक सक्रिय रहता है।	प्रकाश प्रपंच (Light trape) तथा विष चुगा या प्रलोभक 1:10 (गुड़ / शक्कर में मैलाथियॉन 50 ईसी) मिट्टी के प्याले में (प्रति प्याला 100 मिली) खेत के विभिन्न स्थानों पर टांगे व खेत को साफ सुथरा रखें।
2	सिट्रस साइला (*Diaphorina citri*)	निम्फ (Nymph) पौधे के नई वृद्धियों का रस चूसते हैं साथ ही एक प्रकार का मीठा द्रव छोड़ता है जिस पर काली फफूंद (sooty mould) पनपने से पौधे की प्रकाश संश्लेषण पर बुरा असर पड़ता है।	नियंत्रण डाइमिथोयट 30 ईसी की 800 मिली मात्रा की 500 लीटर पानी की दर से छिड़काव किया जाता है।
3	छाल भक्षक कीट	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
4	नाशीजीव– नींबू मूल ग्रंथी सूत्रकृमि (*Tylenchulus semipenetrans*)	पत्तियाँ पीली तथा टहनियाँ सूखने लगती हैं। जड़ क्षेत्र गुच्छेदार, उस पौधे पर फल छोटे व कम लगते हैं तथा जल्दी गिर जाते हैं ।	ऐसी पौधशाला से पौधे नहीं ले। पौधशाला की मिट्टी का शोधन करें तथा फोरेट 10 जी 5–10 ग्राम प्रति पौधा या तरल रूप में विद्यमान कार्बोफ्यूरान 2–3 मिली प्रति लीटर दर से भूमि का मंजन (ड्रेचिंग) करें।
5	व्याधि – एन्थ्रेक्नॉज (*Colletotrichum gloeosporoides*) कवक	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
6	ग्रीनिंग (Greening) /HLB (Huanglongbing) जीवाणु सदृश्य सूक्ष्मजीवों (BLOs)	संचरण सिट्रस साइला द्वारा होता है। मौसम्बी व टेंजेलो में समस्या है। पत्तियों में हरिमाहिनता व फलन कम तथा परिपक्व नहीं होतें।	स्ट्रेप्टोसाइक्लिन व टेट्रासाइक्लीन जैसे जीवाणुनाशियों का उपयोग किया जाता है
7	गोंदाति (*Gummosis*) (*Phytophthora palmivora*) कवक	मुख्य तने के निचले भाग तथा कभी मुख्य शाखाओं पर गोंद जैसा पदार्थ निकलने लगता है व तने की छाल आवरण विहीन हो जाती है।	बाग में जल निकास की समुचित व्यवस्था करें तथा समय–समयपर मुख्य तने के 50–60 सेमी. ऊँचाई तक बोर्डो पेस्ट का लेपन ,प्रतिरोधी मूलवृन्तों (खट्टी नारंगी, ट्राइफोलिएट तथा रंगपुर लाइम) का उपयोग एवं संक्रमित भाग को छील कर उस स्थान पर बोर्डो लेप (1:2:15) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड लेप (1:10) का प्रयोग करें।
8	ट्रिस्टेजा (Tristeza) विषाणु जनित तीव्र क्षरण (quick decline) रोग है। कागजी नींबू इसका मुख्य सूचक पौधा है।	तने में छाल में गड्ढे (pit) तथा शहद के छत्तेनुमा संरचनायें बन जाती है। जड़ सूख जाता है वृक्ष मर जाता है। रोग संचरण भूरा सिट्रस माहू (*Toxoptera citricida*) द्वारा होता है।	बचाव ही उपाय है जिनमें सहनशील मूलवृन्तों का प्रयोग (रंगपुर लाइम, रफ लेमन, क्लयोपेट्रा, ट्राइफोलिएट ओरेन्ज, सिट्रेंज आदि), माहू का नियंत्रण, प्रवर्धन में विषाणु विहीन कलिका का चुनाव तथा क्रॉस प्रोटेक्सन (Cross protection) में सहनशील पौधों का उपयोग आदि है।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) : सन्तरे के पौधे से उत्तम गुणवता वाले अधिक फल प्राप्त करने के लिये खाद एवं उर्वरकों का उचित प्रबन्धन करना चाहिए। सन्तरे के पौधे में सारणी 10.4 अनुसार खाद व उर्वरक देने की अनुशंसा की जाती है –

गोबर की खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा दिसम्बर–जनवरी में देना चाहिये। यूरिया की 1/3 मात्रा फरवरी में फूल आने से पहले तथा 1/3 मात्रा अप्रैल में फल बनने के बाद और शेष 1/3 मात्रा अगस्त माह के अन्तिम सप्ताह में देवें। सन्तरा में फरवरी व जुलाई माह में गौण तत्वों का छिड़काव करना उचित रहता है। इसके लिये 550 ग्राम जिंक सल्फेट, 300 ग्राम कॉपर सल्फेट, 250 ग्राम मैंगनीज सल्फेट, 200 ग्राम मैग्नेशियम सल्फेट, 100 ग्राम बोरिक एसिड, 200 ग्राम फेरस सल्फेट व 900 ग्राम चूना लेकर 100 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सिंचाई व अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture) :

सर्दी में दो सप्ताह व गर्मी में एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फल लगते समय पानी की कमी से फल झड़ने लगते हैं। फल पकने के समय पानी की कमी से फल सिकुड़ जाते हैं व रस की प्रतिशत मात्रा घट जाती है। अतः जब सन्तरे का उद्यान फलन में हो तब आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। खाद देने के बाद सिंचाई करना परम आवश्यक है। बगीचे को साफ सुथरा रखे तथा दक्षिणी व मध्य भारत में मृदा बहार में पुष्पन रखे परन्तु ऊपरी भारत में वृक्ष शीत सुषुप्तावस्था (Winter rest) होने से वसंत में पुष्पन होता है।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning) : संतरे का सुन्दर ढांचा बनाने के लिए प्रारम्भिक वर्षो में कटाई–छँटाई की जाती है। फल देने वाले पौधे को कटाई–छँटाई की कम आवश्यकता होती है परन्तु सूखी व रोगग्रस्त टहनियों को काटते रहना चाहिए।

पौध संरक्षण (Plant protection) : फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियाँ में निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.5

फलों का गिरना (Fruit drop)– यह लगभग सभी नींबू वर्गीय फसलों की समस्या है आर्थिक दृष्टि से हानि जब फसल तुड़ाई के 1–1.5 माह पर गिरने लगे तब 2–4 डी सोडियम लवण बागवानी ग्रेड (10 पीपीएम) या एन.ए.ए. (प्लेनोफिक्स) 20–50 पीपीएम का घोल बनाकर छिड़काव हितकर रहता है। इसके अतिरिक्त फलन के समय भूमि में समुचित नमी बनाये रखना चाहिए तथा कवक जनित रोग (एन्थेक्नॉज, गोदाति आदि) का तुरन्त उचित निदान लाभकारी रहता है।

तुड़ाई व उपज (Harvesting & yield) – कलिकायन द्वारा तैयार किये गये पौधे 3–5 वर्ष की आयु में फल देते है। प्रायः पुष्पन के 8 से 9 माह बाद पक कर तैयार हो जाते है। सन्तरे के फलों का रंग हल्का पीला हो जाये तब इन्हें तोड़ लेना चाहिये। सन्तरे की उपज 600 से 800 फल तथा औसतन 70 से 80 किग्रा प्रति पौधा प्राप्त होती है। सन्तरा के फलों को 5–6 डिग्री तापक्रम व 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 4 महीने तक भण्डारित किया जा सकता है।

केला (BANANA)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
मूसा पेराडिसियाका एल
(*Musa paradisiaca* L.)
कुल (Family) : म्यूजेसी (Musaceae)
गुणसूत्र (Chromosome no.) : 2n = 3x = 33
खाये जाने वाला भाग (Edible Part) : मध्य व अन्तः फल भित्ती (Meso-endoearp)
उद्गम स्थल (Centre of origin) : भारत तथा मलाया
फल का प्रकार (Fruit Type) **: सरस (Berry)**

केला प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में उगाया जा रहा है। इसे कल्पतरू, एडम्सफिंग व एपल ऑफ पेराडाइज के नाम से भी जानते हैं। केले का उपयोग फल तथा सब्जी के रूप में किया जाता है। औद्योगिक स्तर पर आटा, चॉकलेट, फिग, चिप्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं। विश्व में भारत सबसे बड़ा केला उत्पादक राष्ट्र है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & Soil)

यह उष्ण कटिबन्धीय जलवायु का फल वृक्ष है। इसके लिए गर्म, अधिक आर्द्रता एवं अधिक वर्षा वाले क्षेत्र उत्तम

होते हैं। जहाँ गर्मियों में तेज हवायें चलती हैं व जाड़े में पाला पड़ता है ऐसे क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। केले की अच्छी पैदावार के लिए पाला रहित, तेज व गर्म हवाओं रहित क्षेत्र तथा अधिक वर्षा क्षेत्र जो ठीक तरह से वितरित हो उपयुक्त पाये जाते हैं। इस फसल के लिए औसत तापमान 20–30 सेंटीग्रेड उपयुक्त है।

केले की खेती के लिये गहरी उपजाऊ व नमी को अधिक समय तक रोकने वाली भूमि उपयुक्त होती है। समुद्र के डेल्टाओं की रेतीली दोमट, गहरी एलूविअल दोमट व काली कपासीय मृदा केले की खेती के लिए उत्तम होती है। सफल खेती में भूमि का पीएच मान 6.5–7.5 होना चाहिए।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

भारत में केले की किस्मों को मुख्यतः दो समूहों में बाँटा गया है :–

1. **फलों के रूप में प्रयोग की जाने वाली :** पूवन, रसथाली, वीरूपक्षी, चक्रकेली; ड्वार्फ केवेन्डिश, बसराई ड्वार्फ, हरीछाल, रोबस्टा, कारपुरावल्ली (सबसे अधिक मिठास युक्त), लाल केला, हिल बनाना, G-9, सी ओं–1 (संकर किस्म कदली × (म्यूसा बालविसियाना × लेडन) एवं कुन्नन (नवजात शिशुओं के खाद्य उत्पाद बनाने के लिए उपयुक्त)
2. **सब्जी के रूप में प्रयोग की जाने वाली :** पुवन एवं नेन्द्रान (फिग एवं चिप्स बनाने के लिए भी उपयुक्त)

प्रवर्धन (Propagation)

सकर्स द्वारा (Propagation by suckers) : केले में सकर्स दो प्रकार के होते हैं :–

तलवार सकर्स (Sword suckers) : इन सकर्स की पत्तियाँ लम्बी (45 से 60 सेमी.) तलवार की तरह नुकीली व पतली होती हैं। इनसे तैयार पौधा जल्दी बढ़ता है (रोपण के 11 माह में फलन) रोपित सकर्स की उम्र तीन से चार माह की होनी चाहिए तथा वजन 500 ग्राम कम से कम होना चाहिए(साधारणतः वजन 500–750 ग्राम)। इसे रोपण हेतु काम में मुख्यतः लेते हैं।

चौड़ी पत्ती वाले (Water suckers) : ये चौड़ी पत्ती वाले तथा कमजोर सकर्स होते हैं। इनके द्वारा तैयार पौधे धीमी गति से बढ़ते हैं (रोपण के 15 माह में फलन)।

पादप ऊत्तक संवर्धन (Tissue culture) : केले के पौधों के प्रसारण की आधुनिक विधि हैं। इस विधि में अधिक संख्या में शीघ्रता से एक साथ विषाणु रहित पौधे तैयार हो सकते हैं। केले की G-9 किस्म का प्रवर्धन पादप ऊत्तक संवर्धन तकनीक से ही प्रमुखता से किया जा रहा है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

गहरी जुताई कर खेत को अच्छी तरह तैयार करें। 1.5×1.5 मीटर की दूरी पर 30×30×30 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढे खोदें। इन गड्ढों में आधी मात्रा कम्पोस्ट व आधी मात्रा मिट्टी से मिलाकर भरें। 50 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण भूमि–जनित कीटों के नियन्त्रण हेतु गड्ढों में मिलावें। जुलाई की पहली वर्षा के बाद ही सकर्स लगा देने चाहिए। देरी करने से केले की पैदावर पर बुरा असर पड़ता है। सकर्स गड्ढे के बीचों–बीच सायंकाल के समय पूरी तरह जमीन के अंदर लगाकर दबा देने चाहिये एवं सिंचाई कर देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

प्रति पौधा 10 से 15 किलोग्राम गोबर की खाद, 150 ग्राम यूरिया, 150 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 250 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग उपयुक्त होता है। इस खाद की मात्रा को गाँठें लगाने के 3, 4 व 5 माह बाद बराबर भागों में बांट कर देनी चाहिये। नत्रजन का ह्रास तेजी से होता है अतः इसे 3 से 5 बार, 30–40 दिन के अन्तराल पर देते हैं। फॉस्फोरस का अवशोषण रोपण के 2–3 माह पर अधिक होता है। वहीं पोटाश की मात्रा पुष्पक्रम निकलने के साथ ही बढ़ती है। कई अनुसंधानों के परिणाम में सिद्ध हुआ है कि केले को उर्वरक 1: 1: 4 (नत्रजन : फॉस्फोरस : पोटाश) के अनुपात में देने से अधिकतम उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई (Irrigation & interculture)

केले को पानी की अधिक आवश्यकता होती है। पौधे रोपण के तुरन्त बाद यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई कर देनी चाहिए। आवश्यकतानुसार 7 से 10 दिन के अन्तराल पर पानी देते रहना चाहिए। जल प्लावन की स्थिति इसके लिये ठीक नहीं है, अतः जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए, इससे इसकी बढ़वार ठीक रहती है। केले में सिंचाई 7.5 सेमी. गहराई पर प्रति 8–10 दिन के अन्तराल पर तथा 12.5 सेमी. प्रति 15 दिन के अन्तराल पर देनी चाहिए।

वर्षा ऋतु के 2–3 माह में केले के आभासी तने (Pseudo stem) के पास मिट्टी चढ़ाने से पौधे गिरते नहीं हैं। फूल व फल आने पर लकड़ी का सहारा देना चाहिए इसे प्रोपिंग (propping) कहते हैं। पौधे के आधार से अनेक सकर्स निकलते हैं। इन्हें बने रहने दिया जाये तो वे पौधे की खुराक खींच लेते हैं जिससे पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा पेड़ी फसल (रेटूनिंग) लेने पर केवल 1–2 सकर्स ही बढ़ने दिया जाता है। अन्य सकर्स को हटाने हेतु 2–4 डी या पेट्रोल का प्रयोग किया जा सकता है। इस क्रियाकलाप को डिसकरिंग (Desuckering) कहते हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं –सारणी 10.6

सारणी 10.6 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र. स.	कीट–नाशीजीव /व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–बीटल (Stem Weevil: *Cosmopolites sordidus*)	कीट काले रंग के नये पत्तों एवं छोटे–छोटे फलों के कोमल छिलकों को खुरच कर खाते हैं, जिससे पत्तियों एवं फलों पर काली धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। जुलाई से अक्टूबर में सक्रियता अधिक होती है।	मिथाइल डिमेटॉन 25 ईसी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के दर से छिड़काव करें।
2	तना छेदक (Stem Borer: *Odoiporus longicollis*)	लट तने में छेद करके अन्दर चले जाते हैं व प्रौढ़ काले रंग के मुँह लम्बा व सुई जैसा होता है, ये तने को खोखला कर देते हैं। इस कारण पौधा मर जाता है। वर्षा के दिनोमें अधिक सक्रिय रहता है।	गम्भीर रूप से प्रभावित पौधों को खेत से हटाकर जला देवें। फोरेट 10 जी 5 ग्राम प्रति पौधा या कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 2 से 4 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
3	नाशीजीव– बेरोइंग सूत्रकृमि *(Radopholus similis)*	छोटे काले घाव जड़ों पर बना देते हैं जिसमें कई कवक भी आसानी से अन्दर प्रवेश करने से पौधे को दोहरा नुकसान होता है।	राइजोम हमेशा सूत्रकृमि मुक्त क्षेत्र से ही चयन करना चाहिए तथा इनका उपचार किसी दानेदार सूत्रकृमिनाशी (फोरेट) से कर उष्ण जल उपचार (55 ^{0} सेंटीग्रेड पर 20 मिनट) कर छाया में सुखाकर रोपण करें। प्रति गड्ढा 50 ग्राम मिथाम सोडियम को बेजोमेट के साथ मिलाकर इसे 5–10 दिन ढकने के बाद पौधा लगायें।
4	व्याधि– गुच्छ शीर्षरोग (Bunchy top): विषाणु रोग प्रसारण बनाना एफिड (*Pentalonia nigronervosa*) द्वारा ।	पौधों की पत्तियाँ अपरिपक्व अवस्था में ही खुल जाती हैं और सिरे पर सघन पर्ण गुच्छ बनाती हैं, उन पर गहरे हरे रंग के धब्बे व धारियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। देर से संक्रमित पौधो मे फलों के गुच्छे आकार में छोटे रह जाते हैं।	रोग रहित सकर्स का प्रयोग करें। बाग में रोगी पौधों का पता लगते ही उसे समूल उखाड़ कर नष्ट करे। कीटनाशी डाइमिथोएट 30 ई सी या मिथाइल डिमेटोन एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करे।
5	पनामा रोग (फ्यूजेरियम म्लानी) (*Fusarium oxysporum* f.sp. *Qubense)*	पत्तियाँ पीली , डण्ठल टूट जाते हैं और नीचे की ओर लटकी पत्तियाँ सूख कर गिर जाती हैं। स्तम्भ लम्बाई में फट जाता है और पौधा चार से छः सप्ताह में सूख जाता है। रोगी पौधों की जड़ें काली होकर सड़ने लगती हैं। यह रोग रोगी पौधों से आस–पास के पौधों में फैलता जाता है।	पौधों को आसपास की मिट्टी सहित निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये तथा रोगी पौधों के गड्ढे में चूना डालकर भूमि को पानी से 2 से 6 माह तक भरकर रखने से भूमि वापस केला उगाने के लिए उपयोगी बन सकती है। रोग ग्रस्त क्षेत्र में केले की कैवेन्डिश किस्म या पूवन रोगरोधी किस्में हैं।
6	पत्तीधब्बा रोग (सिगाटोका पर्ण धब्बा) कवक (*Mycosphaerella musicola)*	रोगग्रस्त पौधे की पत्तियाँ छोटी व भूरे रंग के धब्बे युक्त हो जाती हैं। फल छोटे आकार के कोणित ही रहते हैं। यह रोग वर्षा के मौसम में जब तापमान 23–25^{0} सेंटीग्रेड हो तो तेजी से फैलता है।	रोकथाम हेतु जल निकास की समुचित व्यवस्था करें, उचित पादप अन्तराल रखें तथा संक्रमित भाग निकाल दें। रसायन में डाइथेन एम–45 जिनेब (डायथेन जेड़–78) 0.1 प्रतिशत की दर से नियमित अन्तराल पर छिड़काव लाभकारी रहता है।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

केले की परिपक्वता की जाँच उसकी 3/4 कोणिता (Angularity) से करते हैं। जब फल पूर्ण विकसित लगभग गोल, हल्के हरापन लिए हुए हो जाए तब इनकी तुड़ाई करनी चाहिए। फलन उम्र पौधे रोपण के समय लिए नए सकर्स, किस्म व स्थान पर निर्भर करती है जैसे पूवन, मोन्थन, रसथाली व ड्वार्फ कैवन्डिश किस्में पौध रोपण के 11–12 महीने में तैयार होती हैं। वहीं बसराई ड्वार्फ महाराष्ट्र क्षेत्र में 14 महीने लेती है। फूल आने से 5 माह बाद फल तैयार हो जाते हैं। सामान्यतः भारत में इसकी तुड़ाई अप्रैल से सितम्बर में की जाती है तथा उपज किस्मों के आधार पर 30 से 40 टन/हेक्टेयर होती हैं।

साधारणतया फलों को वायु रहित कमरे में रख देते हैं तथा एक कोने में धुआँ करने से 30 से 48 घंटे में फल पककर तैयार हो जाते हैं। आजकल रसायनों तथा हार्मोन से भी फलों को पकाया जाता है। इसमें हवा रहित कमरों में एक पात्र में 200 मि. ली. ईथरेल व 10–15 ग्राम सोडियम हाइड्रोक्साइड (NaOH) का घोल प्रति क्विंटल दर से रखकर छोड़ देते हैं। 48 घंटे में केले पक जाते हैं या ईथरल के 1000 पी.पी.एम. में डुबोकर फलों को रखने पर एक जैसे सुनहरे पीले रंग के फल दूसरे दिन तैयार हो जाते हैं। पके फलों को 12–13 डिग्री सेल्सियस तापक्रम व 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर एक सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

अमरूद (GUAVA)

वानस्पतिक नाम : Botanical name) :
सीडियम गुवाजावा एल.
***(Psidium guajava* L.)**

कुल (Family) : मिरटेसी *(Myrtaceae)*

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n=2x=22

खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
पुष्पासन व फल भित्ती

उत्पत्ति स्थल (Centre of origin) : मैक्सिको पेरू

फल का प्रकार (Fruit type) : सरस (Berry)

अमरूद के फलों में विटामिन 'सी' (300 मिग्रा/100 ग्राम गूदे) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसी पोषण मान के कारण इस फल को उष्ण कटिबंधीयों का सेव भी कहते है (Apple of the tropics) फल ताजे रूप में खाने के अलावा गुणवत्ता युक्त जैली बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। हमारे देश में उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद जिला अच्छी गुणवत्ता वाले अमरूद के लिए प्रसिद्ध है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

अमरूद उष्ण तथा उपोष्णीय क्षेत्र का फल है। इसकी फसल उत्पादन हेतु उपयुक्त तापमान 23–28° से. तथा गुणवत्ता युक्त फल शरदकाल में रात का तापमान 10° से. पर बना रहता है तब होता है। जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 250 सेमी. से अधिक होने पर फलों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती। इसका पौधा सूखे की दशा में कम प्रभावित होता है लेकिन वह पाले में शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है। यह विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। वैसे गहरी उपजाऊ बलुई दोमट मिट्टी अमरूद की खेती के लिये उपयुक्त रहती है। मृदा क्षारीयता का मान पी एच 7.6 से अधिकता होने पर उखटा रोग की सम्भावना को बढ़ा देता है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

भारत में उगाई जाने वाली किस्मों में इलाहाबाद सफेदा व लखनऊ–49 (सरदार) प्रमुख है।

इसके अतिरिक्त अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, अर्का किरण, अर्का रश्मि नवीन किस्में हैं जो राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैगलूरू एवं ललित व श्वेता केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ से एवं पंत प्रभात किस्म गो.व.प. कृषि एवं प्रौ.वि.वि, पंतनगर, उत्तरांचल से तथा हिसार सफेदा व हिसार सूर्खा किस्में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से विकसित की गई हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

अमरूद का प्रवर्धन वानस्पतिक तरीके से ही किया जाना चाहिए। बीज से प्रसारित पौधे का प्रयोग मूलवृन्त के लिये किया जाता है जिस पर इनार्चिंग एवं वेंज ग्राफ्टिंग करते है। अमरूद के पौधों को स्टूलिंग एवं लेयरिंग द्वारा भी तैयार किया जाता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

पौधे लगाने का उचित समय जुलाई–अगस्त है लेकिन जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ फरवरी के अन्त में भी पौधे लगाये जा सकते है। पौधे लगाने के लिये 60×60×60 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढ़े, गर्मी के दिनों (मई, जून) में तैयार किये जाते हैं। इन गड्ढों में 25 किलो अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद, 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण तथा मिट्टी के मिश्रण से भरकर वर्षा ऋतु में पौधों को लगा दिया जाता है।

पौधे से पौधे की दूरी 6 से 7 मीटर रखनी चाहिये। सघन पौधा रोपण के लिए अमरूद के पौधे 3×6 मीटर पौधे से पौधे × कतार से कतार की दूरी पर भी लगाये जा सकते है। अति सघन बागवानी (मेडो आरचर्ड) हेतु पौधों को 2×1 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है।

सारणी 10.7 : अमरूद में बहार नियंत्रण

बहार का नाम	फूल आने का समय	फलों की तुड़ाई
अम्बे बहार	फरवरी – मार्च	वर्षा (जुलाई–अगस्त)
मृग बहार	जुलाई–अगस्त	सर्दी (नवम्बर–दिसम्बर)
हस्त बहार	सितम्बर–अक्टूबर	बसंत (मार्च–अप्रैल)

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

प्रति पौध खाद एवं उर्वरक निम्न दर्शायी गयी तालिका 10.8 के अनुसार डालें:–

वर्षा ऋतु वाली फसल के लिये देशी खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा दिसम्बर माह में तथा बची हुई यूरिया की आधी मात्रा मार्च अप्रैल में देनी चाहिये। इसी प्रकार शरद ऋतु की फसल के लिये देशी खाद, सुपर फॉस्फेट, पोटाश व यूरिया की आधी मात्रा जून तथा शेष यूरिया की मात्रा सितम्बर माह में दे देनी चाहिये। सर्दी की फसल लेना अधिक लाभप्रद है क्योंकि फल अच्छे गुणवत्ता वाले व कीट/व्याधि से मुक्त होते हैं। सूक्ष्म तत्वों में जिंक व बोरोन

सारणी 10.8 : खाद एवं उर्वरक

वृक्ष की आयु वर्ष में	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1–3	10–20	0.05–0.25	0.15–1.50	0.20–0.40
4–6	25–40	0.30–0.60	0.50–2.00	0.40–0.80
7–10	40–50	0.75–1.00	2.00	0.80–1.20
10 से अधिक	50	1.00	2.50	1.20

की कमी से पत्तियों का आकार छोटा रहता है। पौधे की वृद्धि रूक जाती है तथा फल फटने जैसी समस्या आ जाती है। इसके नियंत्रण हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव अगस्त व अक्टूबर माह में करना चाहिए।

संधाई व कृन्तन (Training & pruning) :

अमरूद को आरम्भिक वर्षों में साधने हेतु परिवर्तित केन्द्रीय प्ररोह विधि (modified central leader system) काम में लेते हैं। इस विधि में पौधों को 75 सेमी. तक सीधे बढ़ने देते हैं तथा फिर इस ऊँचाई से काट देते हैं जिससे पार्श्व शाखाएँ निकलती हैं। 20–25 सेमी. के अंतर पर 3–4 शाखाएँ चुन ली जाती हैं। अब प्रत्येक 2–3 साल में शीर्ष व किनारे की शाखाओं की छँटाई कर देने से आकार नियंत्रित रहता है। अमरूद में फूल तथा फल, नई वृद्धि शाखाओं पर ही लगते है अतः कृन्तन नियमित प्रति वर्ष अपनाना चाहिये। जिससे नयी वृद्धि अधिक मात्रा में हो। इसके लिए समय अप्रैल माह तथा सघन बागवानी में आवश्यकतानुसार (साधारणतया सितम्बर व फरवरी माह) करें।

बहार नियंत्रण (Crop regulation) :

अमरूद के पौधे पर वर्ष में तीन बार फूल आते हैं। मृग बहार से मिलने वाले फलों की गुणवत्ता अच्छी होती है। इस समय बरसात होने से सिंचाई की कम आवश्यकता होती है। शेष ऋतुओं की बहार को नष्ट कर देना चाहिये। फलतः रोकने के लिये फूलों को हाथ से तोड़ देना चाहिये अथवा फूल आने से 1–1.5 माह पहले पानी नहीं देना चाहिये एवं बाग की गुड़ाई कर देनी चाहिये। एन.ए.ए. के 100 पी.पी.एम. (100 मिग्रा/लीटर) उर्वरक ग्रेड यूरिया का 10 से 15 प्रतिशत सान्द्रता (100 से 150 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव 15 अप्रैल से 15 मई (50 प्रतिशत पुष्पन अवस्था) में करना चाहिये। इससे बहार नियंत्रण में मदद मिलती है। सारणी 10.7

सिंचाई एवं अन्तराशष्यन (Irrigation & interculture) :

गर्मियों में प्रायः 7 से 10 दिन एवं सर्दियों में 15 से 20 दिन के अंतर से सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिये सिंचाई फरवरी मार्च में शुरू करनी चाहिये तथा शरद ऋतु की फसल के लिये सिंचाई जून माह में प्रारम्भ कर देनी चाहिये। फल विकास के समय उचित नमी होना आवश्यक होता है। आरम्भ के तीन वर्षों तक आय का साधन बना रहे इसके लिए मटर, ग्वार, चौला, मिर्च, बैंगन आदि फसलों की खेती की जा सकती है।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.9

जस्ते की कमी : अमरूद की फसल, जस्ते की कमी से सामान्यतः प्रभावित होती देखी गयी है। इससे पत्तियाँ अत्यधिक छोटी व चर्मिल हो जाती हैं और उनकी शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ ताम्र वर्ण हो जाता है। ग्रसित पेड़ों की बढ़वार रूक जाती है और ऊपर से नीचे की और शनैः शनैः मरने लगते है। फल सख्त होकर सूख कर गिर जाते हैं। नियन्त्रण हेतु जिंक

सारणी 10.9 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट– फल मक्खी (*Bactrocera correcta*-Bezzi)	मक्खी बरसात के फलों को विशेष हानि पहुँचाती है। यह फलों के अन्दर अण्डे देती है। जिससे बाद में लटे (मैगट्स) पैदा होकर फल के अन्दर के गूदे को खाने लग जाती हैं।	प्रभावित फलों को इकट्ठा करके भूमि में गहरा गाड़ देवें अथवा नष्ट कर देवें। फेरोमोन ट्रेप लगानी चाहिए। स्पाइनोसेड 45 एस .सी. का 0.5 मिली. प्रति 1 लीटर पानी में प्रयोग करना चाहिए।
2	छाल भक्षक कीट	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
3	व्याधि– म्लानि रोग (मुरझान, उखटा, सूखा या विल्ट) कवक (*Fusarium oxysporum* var.*psidi*, *Gliocladium roseum* *macrophomina sp.*) आदि	आंशिक मुरझान, जिसमें पेड़ की एक या अधिक मुख्य शाखाएँ रोग ग्रस्त होती हैं । इन शाखाओं पर कच्चे फल छोटे भूरे व सख्त हो जाते हैं। बाद की अवस्था में रोग का प्रकोप पूरे पेड़ पर होता है और वह शीघ्र सूख जाता हैं। रोग अगस्त से अक्टूबर माह में उग्र रूप धारण कर लेता है।	बाविस्टीन एक ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल कर 20 से 30 लीटर घोल प्रति वृक्ष से भूमि का मंजन (ड्रेन्च)। रोगी पेड़ों को जड़ सहित उखाड़ कर जला देना चाहिये व उस स्थान की मिट्टी को बाविस्टीन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से दूसरा पौधा लगाने से पूर्व उपचारित करना चाहिये। प्रतिरोधी मूलवृन्त चाइनीज अमरूद (सीडियम–फ्रीड्रिक्स्थेलियेनम) का उपयोग तथा जैविक नियंत्रण उपाय में एस्पर्जिलस नाइजर(पूसा मृदा / काली सेना) व टाइकोडर्मा से करें ।
4	श्याम व्रण (एन्थ्रेक्नोज)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	

सल्फेट 6 ग्राम व बुझा हुआ चूना 4 ग्राम को एक लीटर पानी में घोल कर अप्रैल व जून माह में छिड़काव करने से अच्छा लाभ होता है।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

फलों का रंग जब हरे से पीले में बदलने लगे तब उन्हें सावधानी पूर्वक तोड़ लेना चाहिये। एक पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 40 से 50 किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते हैं। अति सघन बागवानी (मेडो आरचर्ड) में दो वर्ष बाद लगभग 8–10 कि.ग्रा. फल प्रति पौध प्राप्त हो जाता है। तुड़ाई के बाद 9–10 डिग्री सेल्सियस तापमान पर लगभग 2–3 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है व कमरे के तापमान पर अधपके फलों को 5–6 दिन तक रखा जा सकता है।

पपीता (PAPAYA)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : केरिका पपाया एल (*Carica papaya* L.)

कुल (Family) : केरिकेसी (Caricaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 18

खाये जाने वाला भाग (Edible part) : मध्य फल भित्ती (Mesocarp)

उद्गम स्थल (Centre of origin) : **उष्ण कटिबंधीय अमेरिका (मेक्सिको)**

फल प्रकार (Fruit Type) **: सरस (Berry)**

पपीता जल्दी बढ़ने वाला एक फलदार पौधा है। इसके पौधे एक ही वर्ष में फल देने लगते हैं। यह विटामिन–'ए' (2500 आई यू) तथा 'सी' (85 मिग्रा प्रति 100 ग्राम गूदे में) का अच्छा स्रोत है। पपीते के फलों से जैम, कैण्डी, सिरप आदि बनाये जाते हैं। पपीते के हरे फल अपरिपक्व फलों के लेटेक्स से पपेन बनाया जाता है। पपीते के फलों का पीला रंग वर्णक केरिकाजेन्थिन व लाल गूदे वाली किस्म में लाइकोपिन नामक रंजक पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

यह उष्ण जलवायु का पौधा है जो खुले धूप वाले क्षेत्र में पानी की सुविधा के साथ उगाया जा सकता है। इसके लिये पाला हानिकारक होता है। खेती हेतु औसत तापमान 22–26 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त रहता है। रात का औसत तापमान 12–14 डिग्री सेल्सियस से कम होने पर पौध वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जल निकास युक्त दोमट मिट्टी पपीते की खेती के लिये उत्तम रहती है। भूमि की गहराई 45 सेमी. होनी आवश्यक है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

1. फल उत्पादन हेतु : हनीड्यू (मधु बिन्दु), कुर्ग हनीड्यू, वाशिंगटन, कोयम्बटूर–1, को.–3, को.–4, को.–6, पंजाब स्वीट, पूसा डेलिसियस, पूसा जाइन्ट, पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, सूर्या, पंत पपीता आदि। ताइवान फल उत्पादक किस्में : नोन यू नंबर–1, रेड लेडी, सनराईज, ताइवान–786

2. पपेन उत्पादक किस्में : पूसा मैजेस्टी, को.–5, को.–2

3. उभय लिंगी किस्में : पूसा डेलिसियस, पूसा मैजेस्टी, सूर्या, सनराइज सोलो, ताइवान, सीओ–3, सी ओ–7, रेड लेडी, कुर्ग हनीड्यू आदि।

4. गृह वाटिका / गमलों में लगाने हेतु : पूसा नन्हा

5. पारम्परिक किस्में : बरवानी लाल, वाशिंगटन, रांची आदि।

नवीन किस्मों में अर्का सूर्या व अर्का प्रभात जैसी संकर किस्में, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, बैंगलूरू से विकसित की गई हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

पपीते के प्रवर्धन की अच्छी विधि बीज द्वारा है। एक हेक्टेयर क्षेत्र की पौध तैयार करने के लिये लगभग 250–300 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। आज–कल ऐसी किस्में विकसित हुई हैं जिनमें केवल मादा या उभयलिंगी पौधे ही होते हैं जिन्हें गाइनों–डाइसियस (gynodioecious) कहते हैं। इन किस्मों को एक गड्ढे में एक ही पौधा लगाएँ। इस प्रकार इनकी प्रति हेक्टेयर बीज दर (150 ग्राम) भी कम हो जायेगी।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

गर्मी के दिनों में खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके धूप में खुला छोड़ देना चाहिये। इसके पश्चात् देशी हल व पाटा चलाकर भूमि को समतल एवं भुरभुरी बना लीजिए फिर जून के अन्तिम सप्ताह में 45×45×45 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे 2×2 मीटर की दूरी पर खोदें। प्रत्येक गड्ढे में 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट, 10 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद व 50 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिलाकर भर देना चाहिये। जिन किसानों के पास सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो तो फरवरी–मार्च में भी पौध रोपण कर सकते हैं।

तैयार किये गये पौधों को जुलाई–अगस्त माह में बनाये गये गड्ढों में लगा देना चाहिये। प्रत्येक गड्ढे में दो पौधे लगाये। पौधे में फूल आने लगे उस समय मादा पौधे को खेत में रहने देना चाहिये। तथा 10 प्रतिशत नर पौधे जो खेत में ठीक तरह से फैले हो, को छोड़कर शेष नर पौधे को हटा देना चाहिए। गाइनो डायोसियस किस्में जिनमें मादा व उभयलिंगी फूल आते है। एक स्थान पर एक ही पौधा लगावें।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

लगभग 12 से 15 माह में पपीते के पौधों में फल आने लगते है। प्रति वर्ष 25 से 30 किलो गोबर की खाद, 100 ग्राम यूरिया, 400 ग्राम सुपर फॉस्फेट व 150 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधे के हिसाब से देना चाहिये। यूरिया की 25 ग्राम मात्रा पौध लगाने के दो माह बाद, 35 ग्राम पौध लगाने के चार माह बाद तथा 50 ग्राम फूल आने से पूर्व देवें। सुपर फॉस्फेट की 200 ग्राम मात्रा गड्ढा भरते समय तथा 200 ग्राम मात्रा पौध रोपण के 5 से 6 माह बाद (दिसम्बर–जनवरी) देवें। पोटाश 75 ग्राम मात्रा दिसम्बर–जनवरी में देवें। देशी खाद की मात्रा जून–जुलाई में देनी चाहिये। सूक्ष्म तत्व जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत व बोरान 0.2 प्रतिशत के साथ 0.4 प्रतिशत चूना मिलाकर पर्णीय छिड़काव रोपण के 8 माह पर करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

सिंचाई एवं अन्तःशस्यन (Irriagation & inter culture)

पपीते की जड़े भूमि में गहरी नहीं जाती हैं अतः थोड़े–थोड़े समय के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिये लेकिन इस बात का विशेष ध्यान देते रहें कि पेड़ के तने के पास पानी भरा नहीं रहे वरना जड़ और तने के सड़ने की सम्भावना रहती है। गर्मियों में लगभग एक सप्ताह के अन्तर से तथा जाड़े में 10 से 15 दिन के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिये। खेत में जल निकास की समुचित व्यवस्था रखनी चाहिये तथा तने के चारों तरफ थोड़ी मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये ताकि पानी तने के सीधे सम्पर्क में नहीं आये। बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति अपनाने से फल उपज व गुणवत्ता में सुधार होता है। अन्तः फसलें लेते समय ध्यान रखें साथ में सोलेनेसी (टमाटर, मिर्च आदि) व कद्दूवर्गीय सब्जियाँ न लें।

लिंग–भेद (Sex identification) : पौध रोपण के लगभग 50 दिन बाद पुष्पन आरम्भ होता है। पपीते में तीन तरह के पुष्प होते हैं नर, मादा और उभयलिंगी।

- **मादा फूल :–** ये पत्तियों के कक्ष से छोटे डण्ठलों पर

निकलते हैं। इनकी लम्बाई एक से तीन इंच तक होती है। इनका आकार बड़ा तथा नीचे से चकरीनुमा होता है। इनमें पुंकेसर नहीं होता और डिंब ग्रन्थि स्पष्ट दिखाई देती है। यह ग्रन्थि बाद में विकसित होकर अण्डाकार या गोल हो जाती है और पपीते के फल के रूप में आती है।

- **नर फूल :–** लम्बी टहनियों पर पुष्प गुच्छे लटके हुए होते हैं। फूल छोटे और पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। ये फूल पत्तियों के कक्ष से अकेले या गुच्छे में छोटे डण्ठलों पर लगते हैं। इन फूलों में फल नहीं बनते। यह फूल मादा फूल से पतले तथा छोटी–छोटी नलिकाओं की तरह होते हैं।
- **उभयलिंगी फूल :–** उभयलिंगी पेड़ पर मध्यम आकार के नर और मादा के बीच के फूल होते हैं। यह पुष्प गुच्छों में निकलते हैं इनमें नर व मादा दोनों प्रकार के भाग एक ही फूल में होते हैं। अर्थात इनमें डिंब ग्रन्थि भी होती है और पुंकेसर भी। इस तरह के पेड़ों में लम्बे आकार के खीरा की शक्ल के फल लगते हैं। इन तीनों प्रकार के फूलों में मादा व नर फूल तो स्थिर संख्या में रहते हैं परन्तु उभयलिंगी फूलों का लिंग वातावरण में भिन्नता के अनुसार बदलता है।

पपेन निकालना (Papain extraction)

हरे एवं कच्चे पपीते के फलों से सफेद रस या दूध निकालकर सुखाये गये पदार्थ को पपेन कहते हैं। इसका प्रयोग प्रोटीन को पचाने, एल्कोहल, दवा एवं चिवंगम निर्माण में किया जाता है। पपेन एक महंगा उत्पाद होने के कारण इसका उत्पादन करके अधिक लाभ लिया जा सकता है। अधिकतम पपेन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पपेन सूर्य निकलने से पूर्व ही निकाल लेना चाहिए। साधारणतः प्रातः 6–9 बजे के बीच पपेन निकालना सर्वोत्तम है।

पपेन प्राप्त करने के लिए तीन–चौथाई विकसित (3 महीने पुराने) फलों पर डण्ठल की ओर से करीब 3 मि.मी. गहराई के 4–5 चीरे लम्बाई के हिसाब से लगाते हैं। प्रतिदिन ऐसी चार कट प्रति फल लगाये जाते हैं। चीरा लगाने के तत्काल बाद फलों से दूध निकलने लगता है, जिसे किसी मिट्टी या एल्यूमिनियम के बर्तन में इकट्ठा कर लिया जाता है। इस प्रकार फल की पूरी अवधि में 12 से 15 बार चीरा लगाकर दूध निकाला जा सकता है। चीरा लगाये गये फलों को पकने दिया जाता है जिनका स्वाद सामान्य फलों के समान होता है। परन्तु रंग खराब हो जाने के कारण बाजार माँग में कमी आ जाती है। अतः इन फलों का उपयोग जैम, मुरब्बा, टूटी–फ्रूटी एवं फल शेक के रूप में करना अच्छा रहता है। इकट्ठा किये गये दूध को चौड़े आकार के मिट्टी के पात्र में डालकर धूप में अथवा 50–60 डिग्री सेल्सियस तापमान पर सुखाया जाता है। तरल दूध में थोड़ा–सा (350 पी. पी.एम.) पोटेशियम मेटाबाई सल्फाईट मिला दिया जाता है। इससे पपेन लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

बीजोत्पादन (Seed production)

पपीते का बीज उत्पादन भी एक अत्यधिक लाभकारी व्यवसाय है। पपीते में पर–परागण के कारण शुद्ध किस्म के बीज उत्पादन करना एक जटिल प्रक्रिया है। फिर भी अत्यधिक सावधानी एवं नियंत्रित परागकण द्वारा काफी हद तक सन्तोषजनक किस्म की शुद्धता रखते हुए बीज उत्पादन किया जा सकता है। बीजोत्पादन में जब मादा फूलों का परागण उभयलिंगी फूलों से किया जाता है तो मादा और उभयलिंगी संतानें समान संख्या में पैदा होती हैं। इस प्रकार के परागण किस्म निम्नता (Inbreeding depression) सबसे कम होती है तथा इस तरह की सहोदर संगम (Sib mating) से ओजपूर्ण संतति प्राप्त होती है।

चुने हुए पौधों में परागण के बाद विकसित मादा फलों में से अच्छी किस्म के गुणों के अनुसार आकार एवं भार वाले फलों को पूर्ण रूप से पकने के बाद तोड़ना चाहिए। चयनित फलों को काटकर बीज प्राप्त कर लेते हैं। बीजों को राख में रगड़कर साफ कर लेना चाहिए तथा छायादार स्थान पर सुखाना चाहिए। पूर्णरूप से सूखे, स्वस्थ, साफ, पके बीजों को कवकनाशी दवा से उपचारित करके बीजों को शुष्क हवादार एवं ठण्डे स्थानों पर एक वर्ष तक भण्डारित रखा जा सकता है।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.10

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

जब फल हल्का या पीलापन लेने लगे और उसमें सफेद दूध आना बन्द हो जाये तो समझना चाहिये कि फल पक गया है अतः इनकी तुड़ाई कर लेनी चाहिये। फलों को पक्षियों से बचाने के लिये इनके चारों ओर पुराना टाट बाँधा जा सकता है। पपीते से प्रति पौधा 40 से 50 किलोग्राम उपज प्राप्त होती है। प्रति पौधा औसतन 200 ग्राम पपेन प्राप्त किया जा सकता है। परिपक्व फलों को 13–14 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 1–2 सप्ताह के लिए भण्डारित किया जा सकता है।

सारणी 10.10 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट–नाशीजीव / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–माहू (*Mysus persicae*) एवं सफेद मक्खी (*Bemisia tabaci*)	ये कीट पत्तियों से रस चूस कर नुकसान पहुँचाते हैं। माहू मोजेक या रिंग स्पोट वायरस तथा सफेद मक्खी पर्ण कुंचन विषाणु को फैलाती हैं।	मिथाईल डेमेटोन 25 ई सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर या डाइमिथोएट 30 ई सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
2	नाशीजीव– मूल ग्रन्थि (सूत्रकृमि) मिलाइडोगाइनी	पौधा कमजोर और पीला पड़ जाता है और फल भी छोटे व कम लगते हैं।	पौध तैयार करते समय मिथाम सोडियम व बेंजोमेट का मिश्रण 50 ग्राम प्रति एक वर्ग मीटर क्षेत्र के हिसाब से मृदा में मिलाकर इसे 5–10 दिन तक ढककर बाद में पौध लगावे तथा खेत में ट्राइकेडर्मा से उपचारित गोबर की खाद तथा कार्बोसल्फान 25 ईसी दवा से मृदा का मंजन (ड्रेंच) कर दें।
3	व्याधि–क्लेद–गलन रोग (डेम्पिंग ऑफ) व स्तम्भ मूल संधि विगलन (कॉलर रॉट) कवक *(Pythium aphanidermatum)*	पौधशाला का रोग है जिसमें छोटे–छोटे पौधे नीचे से गलकर मर जाते हैं जिसे डेम्पिंग ऑफ कहा जाता है वहीं कॉलर रॉट में भूमि के पास से तने की ऊपरी छाल गलने लगती है तथा पौधा सूख जाता है।	बाग में पानी का निकास अच्छा होना चाहिये। रोग दिखाई देते ही रोगग्रस्त भाग को पूरी तरह हटाकर कॉपरआक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का लेप या छिड़काव कर देवें। बोर्डो मिश्रण (5:5:50) तने के आधार के चारों ओर भूमि में डालने व तने पर छिड़काव करने से रोग का प्रसार घट जाता है। नर्सरी में पौध को रोग से बचाने के लिये मिट्टी को 3 ग्राम ताम्रयुक्त कवकनाशी प्रति लीटर पानी की दर के घोल से तर कर देवें और बीजों को थाइरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोयें।
4	तना या पद विगलन रोग (स्टेम या फुट रॉट) कवक (*Phytophthora palmivora*)	पेड़ों की छाल फट जाती है व शहद के छत्तेनुमा दिखाई देती है। ऐसे पेड़ गिर जाते हैं।	
5	पर्णकुंचन (लीफ कर्ल) व मोजेक (रिंग स्पोट)	पर्णकुंचन रोग से पत्तियाँ आकार में छोटी, कुंचित, विकृत व सिकुड़न लिये मोटी शिराओं वाली उल्टे प्याले के रूप में नीचे की तरफ एवं भीतर की ओर मुड़ जाती हैं। मोजेक रोग से नई पत्तियों पर चितकबरापन व सिकुड़न सबसे पहले दिखाई पड़ता है। फल छोटे विकृत वाले होते हैं।	कीटनाशी डाइमिथोएट 30 ईसी 1 मिलीलीटर/लीटर या इमिडाक्लोरप्रिड 1 मिलीलीटर प्रति 3 लीटर पानी के हिसाब से घोलकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें। इन दवाओं का प्रयोग फल लगने से पहले ही करना चाहिये। फल लगने के बाद स्पनाइनोसाइड आधा मिली प्रति लीटर की दर से छिड़कना चाहिए। पपीते के बाग के आसपास कद्दू, लौकी, ककड़ी, बैंगन, मिर्च, टमाटर व आलू नहीं उगायें।

बेर (BER)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : जिजिफस मोरीसियाना लेम्क. (*Ziziphus mauritiana* Lamk.)

कुल (Family) : रैहमनेसी (Rhamnaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 4x = 48

खाये जाने वाला भाग (Edible part) : बाह्य व मध्य फल भित्ती (Peri-Mesocarp)

उद्‌गम स्थल (Centre of origin): इण्डो–चाइना (Indo-china)

फल प्रकार (Fruit type) : अष्ठिल (Drupe)

बेर के फलों का प्रयोग ताजे फलों के रूप में सुखाकर छुआरों के रूप में, शर्बत, जैम, मुरब्बा, केण्डी, चटनी एवं अचार बनाकर किया जाता है। बेर के फल विटामिन सी (150 मिग्रा. प्रति 100 ग्राम), ए व बी कॉम्पलेक्स से भरपूर होते हैं इस पोषण के कारण अन्य फलों की तुलना में इसको बहुत ही कम पानी की आवश्यकता होती है। जलवायु भिन्नता के कारण उत्तरी भारत में ग्रीष्म ऋतु (मई–जून) में बेर के पत्ते झड़ जाते हैं और पौधे सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं जबकि दक्षिण भारत में सम जलवायु होने के कारण पूरे वर्ष भर पौध वृद्धि होती रहती है। इसकी खेती क्षारीय तथा लवणीय भूमि में भी कर सकते है किन्तु बलुई दोमट भूमि जिसमें जीवांश की मात्रा अधिक हो इसकी खेती के लिये उपयुक्त रहती है। बेर मृदा की उच्च लवणता (21 ई.एस.पी.) को भी सहन करने में सक्षम है।

उन्नत किस्में (Improved varieties) सारणी 10.11 देखें।

प्रवर्धन (Propagation) -

बेर का प्रवर्धन कलिकायन द्वारा किया जाता है। उमरान व गोला किस्म के लिए देशी बोरड़ी (जीजीफस रोटेन्डीफोलिया) मूलवृन्त अति उपयोगी पाया गया है। स्वस्थानिक (इन सूटू) विधि में मूलवृन्त सीधे बाग में रेखांकन के अनुसार लगाये जाते हैं जिन पर अगले वर्ष पैबंद चढ़ाते हैं।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

मई जून माह में 1×1×1 मीटर आकर के गड्ढे 6 से 8 मीटर की दूरी पर खोद लेते हैं फिर इन गड्ढों को खुला छोड़ देते है बाद में इनमें सारणी 10.12 के अनुसार खाद व उर्वरक प्रति गड्ढा देते हैं।

खाद उर्वरक एवं दवा को खोदी हुई मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला देते है और फिर इस मिट्टी को गड्ढें में भर देते है। कलिकायित पौधों को थावलों के बीच लगाने के बाद सिंचाई कर देते हैं। इसकी रोपाई का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु है।

सारणी 10.11 : बेर की उन्नत किस्में एवं पकने का समय

फसल	उन्नत किस्में	फल पकने का समय
अगेती	गोला, थार सेविका व थार भुवराज	जनवरी का प्रथम सप्ताह
मध्यम	सेब, मूण्डिया, जोगिया, कैथली व चौमूलोकल	जनवरी का अन्तिम सप्ताह
पछेती	उमरान	फरवरी अन्तिम सप्ताह से मार्च प्रथम सप्ताह

मान के कारण इसे गरीबों का सेब (poor men's apple) कहते हैं। इसके अतिरिक्त बेर के पौधे का लाख के कीड़ों को पालने में और इसके पत्तों का प्रयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। बेर की पत्तियों में 5.6 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन और 49.7 प्रतिशत कुल पाच्य पोषक तत्व पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

बेर शुष्क एवं अर्ध शुष्क जलवायु की अलग–अलग दशाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। मूसला जड़ होने

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

प्रति पौधा खाद एवं उर्वरक निम्न दर्शायी गयी तालिका 10.13 के अनुसार डालें:–

यूरिया की आधी मात्रा और सुपर फॉस्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा जुलाई एवं बाकी बची हुई यूरिया की आधी मात्रा नवम्बर माह में देनी चाहिये। खाद व उर्वरक देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिये।

सारणी 10.12 : खाद, उर्वरक एवं रसायन

अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद	20 से 25 किग्रा
सुपर फॉस्फेट	1 से 1.5 किग्रा
क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण	50 से 100 ग्राम

सारणी 10.13 : खाद एवं उर्वरक

पेड़ों की आयु वर्ष में	मात्रा किलोग्राम प्रति पेड़			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	10	0.22	0.35	0.08
2	20	0.44	0.70	0.16
3	20	1.10	1.40	0.20
4	25	1.20	1.75	0.25
5 वर्ष और उसके बाद	30	1.20	1.75	0.25

सिंचाई एवं अन्तराशस्य (Irrigation & interculture)

बेर के पौधों में कम पानी की आवश्यकता होती है। साधारण तौर पर फूल आने से पूर्व फल बनने की अवस्था पर 15 से 20 दिन अन्तराल पर 2–3 बार सिंचाई करना लाभप्रद होता है। मार्च–अप्रैल में पौधों को पानी देना फल परिपक्वता में देरी करता है। आरम्भ के तीन वर्षों तक बाग मे कूष्माण्ड कुल की सब्जियाँ के अतिरिक्त सभी प्रकार की सब्जियाँ जैसे मटर, ग्वार, चौला, मिर्च, बैंगन आदि ली जा सकती है। खरपतवार नियंत्रण हेतु डाईयूरोन (अंकुरण से पहले) तथा ग्लाईफोसेट (अंकुरण के बाद) 2 किलो प्रति हैक्टेयर के हिसाब से दे सकते हैं।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning)

प्रारम्भिक दो या तीन साल तक पौधे को सशक्त रूप और उचित आकार देने के लिये पौधे के मुख्य तने पर 4 से 5 प्राथमिक शाखाएँ हर दिशा में रहने देते हैं। पहली शाखा को जमीन की सतह से 30 सेमी. ऊपर रखते हैं। इसके बाद प्रत्येक शाखा के बीच में करीब 15 से 30 सेमी. की दूरी रखते हैं। बेर में प्रति वर्ष कृन्तन करना चाहिये क्योंकि इसकी पत्तियों के कक्ष से जो नये प्ररोह निकलते हैं उन्ही पर फूल एवं फल लगते हैं। मई में गर्मी प्रारम्भ होने पर पौधे सुषुप्तावस्था में प्रवेश कर जाते हैं तब इनकी कटाई–छँटाई (15 अप्रैल से 15 मई) कर देनी चाहिये जिससे ज्यादा नये प्ररोह निकलें और उन पर अधिक फल लगें। कृन्तन करते समय अनचाही रोगग्रस्त सूखी टहनियों और आपस में रगड़ खाती हुई टहनियों को हटा देना चाहिये। बेर में 6–द्वितीयक शाखाएँ (सेकेण्ड्रीज) स्तर तक या गत वर्ष की 25 प्रतिशत शाखाओं को हर वर्ष काटें।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.14

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

बेर के फल फूल आने के 150–175 दिन के बाद परिपक्व

सारणी 10.14 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–फल मक्खी (*Carpomya vesuviana*)	जब फल छोटे व हरे रहते है तब इस कीट का आक्रमण शुरू होता है। छोटे फल इसके प्रभाव में काणें हो जाते हैं लेकिन बड़े फलों के आकार में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है।	समन्वित कीट नियंत्रण विधि में बेर के थावलों में मिट्टी खोदकर उनमें प्रति थावला 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1 .5 प्रतिशत चूर्ण मिलावें साथ ही जब बेर मटर के दाने जैसा हो जाये तो तीन छिड़काव क्यूनालफॉस (25 ई सी) 2 मिलीलीटर या स्पाइनासेड (45एस.सी.)0.5 मिली. प्रति लीटर दवाई का घोल बनाकर 15–15 दिन के अन्तराल पर करने से बेर के बगीचों में पूर्ण कीट नियंत्रण किया जा सकता है।
2	चैफर बीटल (*Adoretus* sp.)	प्रकोप जून–जुलाई में अधिक होता है। यह पेड़ों की नई पत्तियों एवं प्ररोहों को खाता है।	
3	व्याधि– छाछ्या रोग (*Oidium erysiphoides F.sp. Ziziphi*)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें	
4	ऑल्टरनेरिया फल सड़न (*Alternaria sp.*)	फलों में फलवृन्त के निकट गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग ग्रसित फल शीघ्र ही टूट कर गिर जाते हैं।	इसके नियंत्रण के लिए जिनेव या डायथेन एम–45 नामक कवकनाशी के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव लक्षण दिखाई देते ही करना चाहिए।

होते हैं। यद्यपि फलों की परिपक्वता उस क्षेत्र की जलवायु एवं किस्मों पर निर्भर करती है फिर भी फलों के रंग बदलने की अवस्था पर (तुड़ाई के एक सप्ताह पहले) 750 पी.पी.एम. इथेफोन के छिड़काव से उसमें अग्रिम परिपक्वता लायी जा सकती है। पके हुए फलों की तुड़ाई कई बार में की जाती है। सामान्यतः फलों की तुड़ाई प्रातःकाल में करनी चाहिए।

बेर के एक पूर्ण विकसित पौधे से 40–200 किलोग्राम फल उपज प्राप्त होती है। वर्षा पर आधारित बाग के पाँच वर्ष के पेड़ से औसतन 40–50 किलोग्राम फल उपज प्राप्त होती है जबकि सिंचित बाग से प्रति पेड़ औसत फल उपज असिंचित पौधों की तुलना में 3–4 गुना (100–200 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष) अधिक होती है। बेर के पौधों में तीसरे वर्ष फलन प्रारम्भ हो पाता है परन्तु व्यवसायिक फल उपज पाँचवें वर्ष से आरम्भ हो जाती है। बेर के फलों को साधारण भण्डार में 4–5 दिन तक रखा जा सकता है परन्तु प्रीकूलिंग (10 डिग्री से.) कर फलों को 0–3 डिग्री सेल्सियस तापक्रम एवं 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर फलों को लम्बे समय तक ताजा रखा जा सकता है।

अंगूर (GRAPES)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
विटिस विनिफेरा मिचस.
(*Vitis vinifera* Michse.)
कुल (Family) : विटेसी (Vitaceae)
गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 40
उद्‌गम स्थल (Centre of origin) :
आर्मेनिया (एशिया माइनर के पास)
फल प्रकार (Fruit type) : सरस (Berry)
खाये जाने वाला भाग (Edible part) : फल भित्ती व प्लेसेन्टा (Pericarp & Placentae)

अंगूर एक बहुत ही स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल है। इसमें ग्लूकोज (8–13%) व फ्रूक्टोज (7–21%) नामक शर्करा, खनिज लवण एवं विटामिन 'बी' प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी खेती शराब बनाने, ताजा फल खाने तथा सुखाकर किशमिश और मुनक्का बनाने के लिये की जाती है। अंगूर की उत्पादकता में भारतवर्ष का विश्व में प्रथम स्थान है। भारतवर्ष में उगायी जाने वाली अधिकतर जातियाँ ताजा फलों के रूप में प्रयोग में ली जाती हैं।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

अंगूर की सफल खेती के लिये गर्मियों में अधिक गर्मी, सर्दियों में अधिक सर्दी लेकिन पाला रहित तथा पकने के समय वर्षा रहित मौसम उपयुक्त रहता है। पुष्पन के समय वर्षा होने पर फल कम बनते हैं। फलों के पकते समय वर्षा हो जाने से फलों की गुणवत्ता घट जाती है। अंगूर विभिन्न प्रकार की भूमि में पैदा किया जा सकता है परंतु इसके लिये जल निकास युक्त हल्की दोमट भूमि सर्वश्रेष्ठ रहती है। भूमि का pH मान 6.5–7.5 खेती हेतु उपयुक्त रहता है। मृदा में चूने की अधिकता को यह सहन नहीं कर पाता है। क्षारीय भूमि में अंगूर की खेती के लिए क्षार प्रतिरोधी मूलवृन्त जैसे साल्ट क्रीक, टेलकी–5ए, डॉगरिज, 1616 तथा 1613 का उपयोग करना चाहिए।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

अंगूर की किस्मों को केनिग (डिब्बाबंदी) रसदार, किशमिश, खाने योग्य एवं शराब बनाने में उपयोगिता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इसकी मुख्य किस्में निम्न प्रकार से हैं :–

रसदार : चेम्पियन, अनाब–ए–शाही, बैंगलोर ब्लू, कोनकोर्ड, बैंगलोर परपल, अर्ली मस्कट, काली साहेबी, ब्यूटी सीडलेस, पर्ल ऑफ कसाबा, डीलाइट।

किशमिश के लिए : ताजा अंगूर को सुखाकर उसे 17 प्रतिशत नमी तक लाकर किशमिश बनायी जाती है। किशमिश बनाने में प्रयुक्त किस्मों का मिठास मान 20–22 डिग्री ब्रिक्स (TSS) रखते हैं। ब्यूटी सीडलेस, पूसा सीडलेस, थॉम्पसन सीडलेस (इसके क्लोन प्रमुखतः ताश–ए–गणेश, सोनाका, मनिक चमन), किशमिश चार्नी, शरद सीडलेस (किशमिश चार्नी का उत्परिवर्तन), सुल्तानिया।

केनिंग (डिब्बा बंदी) : थॉम्पसन सीडलेस, पूसा सीडलेस, परलेट, ब्लैक चम्पा, पर्ल ऑफ कसाबा,

मुनक्का के लिएः अनाब–ए–शाही, गुलाबी, दिलखुश (अनाब–ए–शाही का क्लोन)

खाने योग्य (Table Varieties) : रसदार किस्मों की तरह मिठास मान 12–20 डिग्री ब्रिक्स होना चाहिए। डीलाइट, परलेट, न्यू परलेट, मसकट ऑफ हेम्बर्ग, भोकरी, कार्डिनल, अनाब–ए–शाही, ब्लेक मस्कट, अर्ली मस्कट, फ्लेम सीडलेस,

ब्यूटी सीडलेस, रेड ग्लोब (बड़े आकार के फल)

शराब के लिए : इस हेतु मिठास मान 24 डिग्री ब्रिक्स से अधिक होना चाहिए किस्में– चैम्पियन, अनाब–ए–शाही, थोम्पसन सीडलेस, पूसा सीडलेस, बैंगलोर परपल, ब्यूटी सीडलेस, हिमरोड, अर्का श्याम, अर्का कंचन, चीमा साहेबी, रूबी रेड, रेड प्रिन्स, मेडेलिन एन्जेविन, भोकरी।

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा 1980 में अंगूर की चार संकर किस्मों जैसे : अर्कावती, अर्का कंचन, अर्का हन्स एवं अर्का श्याम का विकास किया गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा पूसा सीडलेस (चयन विधि द्वारा) पूसा नवरंग (मेडेलिन अनजीवाइन ×रूबीरेड) एवं पूसा उर्वशी (हूर × ब्यूटी सीडलेस) विकसित की गई हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

अंगूर के प्रर्वधन का सबसे उत्तम तरीका कलम द्वारा है। कलम बनाने का उत्तम समय जनवरी माह है। कलम लगभग 30 सेमी. लम्बी तथा मध्यम मोटाई की छाँटनी चाहिये।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

पौध लगाने का सबसे अच्छा समय जनवरी–फरवरी माह है। अंगूर साधारणतया आयताकार या वर्गाकार विधि से लगाया जाता है। पौधे से पौधे व कतार से कतार की दूरी वहाँ की जलवायु, भूमि की किस्म व पौधे की किस्म पर निर्भर करती है। पौधों को साधारणतया 2.5 से 3 मीटर के दूरी पर लगाया जाना ज्यादा अच्छा रहता है। जिस खेत में अंगूर के पौधे लगाने हो, वहाँ पौधे लगाने के समय से कुछ दिन पूर्व 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे खोदकर कुछ दिन के लिये खुला छोड़ देना चाहिये। इसके बाद प्रत्येक गड्ढे में 25 किलो गोबर की सड़ी हुई खाद तथा आधा किलोग्राम सुपर फॉस्फेट एवं 50 से 100ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत देना चाहिये।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer)

अंगूर के पौधों को निम्न तालिका 10.15 के अनुसार खाद एवं उर्वरक देवें।

खाद व उर्वरक की मात्रा देते समय ध्यान रखना चाहिये कि देशी खाद कटाई छँटाई के तुरन्त बाद दी जाये एवं यूरिया की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा देशी खाद के साथ ही मिट्टी में मिला दी जाये। सुपर फॉस्फेट खाद गहरी खुदाई करने के बाद देनी चाहिये। यूरिया की आधी मात्रा अप्रैल माह में फल बनने पर देनी चाहिए।

सारणी 10.15 : खाद एवं उर्वरक

	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा में			
आयु वर्षों में	देशी खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	20	0.20	0.25	-
2	40	0.40	0.50	-
3	50	0.60	1.00	0.20
4	60	0.80	1.50	0.40
5 और उसके बाद	70	1.00	2.00	0.40

सिंचाई एवं निराई गुड़ाई (Irrigation & interculture)

अंगूर की खेती में सिंचाई की मात्रा, जलवायु, भूमि तथा बेलों की आयु पर निर्भर करती है। अंगूर की उपयुक्त उपज लेने के लिये यह आवश्यक है कि समय समय पर उसकी सिंचाई की जाये। सिंचाई का विशेष महत्व कटाई–छँटाई के बाद से फलों के पकने तक है। इसके बाद इसकी सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसलिये कटाई–छँटाई के बाद व खाद देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिये। फल तोड़ने से एक सप्ताह पूर्व सिंचाई बंद कर दे इससे फलों की मिठास बढ़ जाती है। सिंचाई के बाद निराई गुड़ाई करना तथा खरपतवारों को निकालते रहना बहुत आवश्यक है लेकिन खरपतवारों को नष्ट करने के लिए 2, 4–डी का प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये।

संधाई व काट–छाँट (Training & pruning)

पौधों का आकार सुनियोजित करने के लिये तथा उनसे अधिकतम आय प्राप्त करने के लिये उनकी ट्रेनिंग बहुत जरूरी है। इसके लिये बेलों/शाखाओं की समय से कटाई–छँटाई कर उनको एक निश्चित आकार में विकसित किया जाता है।

इसके लिये जैसे–जैसे पौधा बढ़े तथा उस पर पार्श्व शाखाएँ पैदा हो, उन्हें बढ़ने न दिया जाये जिससे पौधा पहले केवल लम्बाई में ही बढ़ सके। इसके बाद प्रत्येक पौधे के साथ 15 से 20 सेमी. की दूरी पर एक तीन मीटर लम्बा बांस गाड़ देना चाहिये जिसके सहारे बेल चढ़ सके। बांस के निचले हिस्से पर एक फुट डामर पोत देना चाहिये ताकि दीमक न लगे।

अंगूर के पौधों की ट्रेनिंग निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है।

1. शीर्ष विधि : इस विधि से सधी हुई लता झाड़ीदार होती है जिसका तना 75–90 सेमी. ऊँचा तथा सीधा होता है। इस तने के शीर्ष पर 5–6 छोटी छोटी शाखाएँ फैलती हैं। शुरू के कुछ वर्षो में लता को एक सहारे की आवश्यकता होती है। लेकिन जब चार पाँच वर्षों में तना काफी मजबूत हो जाता है। तो फिर सहारे की आवश्यकता नहीं होती है। इन मुख्य शाखाओं पर निकले कल्ले जब एक वर्ष पुराने हो जाये तो जाड़े के दिनों में उन्हें दो तीन गाँठों पर काट दिया जाता है। इनके ऊपर मार्च के

महीने में कल्ले निकलते हैं जिन पर फूलों का गुच्छा निकलता है। यह विधि कम बढ़ने वाली किस्में जैसे ब्यूटी सीडलेस, परलेट के लिये उपयुक्त है।

2. निफिन विधि : यह विधि विलियम निफिन द्वारा न्यूयार्क में 1850 में विकसित की गई, जिसमें लोहे या लकड़ी के खम्बे के सहारे दो तार भूमि में क्रमशः 1.05 व 1.65 मीटर की ऊंचाई पर एक छोर से दूसरे छोर तक बाँध दिये जाते है। खम्भों की दूरी 4.8 मीटर रखनी चाहिये। लता को भूमि से 1.65 मीटर की ऊँचाई से काट दिया जाता है तथा तारों के साथ दोनों दिशाओं में स्थाई रूप से बगल की चार शाखाएँ विकसित की जाती है। इन शाखाओं पर फैलने वाले केन (एक वर्ष पुरानी परिपक्व शाखा) अच्छी तरह से विकसित किये जाते हैं। इन केनों के फैलने के लिये 7–12 गाँठों तथा दलपुट बनाने के लिये 1 से 2 गाँठों पर काटा जाता है। मध्यम ओजस्वी किस्में जैसे थॉम्पसन सीडलेस, परलेट के लिये यह विधि उपयुक्त है।

3. टेलीफोन विधि : इस विधि में 3.5 से 4.8 मीटर की दूरी पर खम्भे गाड़े जाते है इन खम्भें के ऊपरी भाग पर 1.2 मीटर लम्बी भुजाये होती हैं। प्रत्येक भुजा में तीन छेद बने होते हैं तथा इन छेदों में से तीन तार कतारों में बाँधे जाते हैं। लता को 1.8 मीटर की ऊँचाई पर काट दिया जाता है तथा 5 से 6 शाखाएँ अच्छी प्रकार से फैलायी जाती है। इस तरह साधी गयी शाखाओं की काट–छाँट निफिन विधि की तरह करते हैं। यह विधि भी मध्यम ओजस्वी किस्में जैसे परलेट, थॉम्पसन सीडलेस के लिये उपयुक्त है।

4. पंडाल विधि : इस विधि को परगोला, बावर व आरबोर के नाम से भी जानते हैं, इस विधि में 4.5 से 6 मीटर की दूरी पर 1.95 से 2.10 मीटर ऊँचे खम्बे गाड़ दिये जाते हैं। इन्हीं खम्बों से तार खड़े व आड़े दोनों तरह से 45 से 60 सेमी की दूरी पर खींचे जाते हैं। लताओं को इसी जाली के ऊपर साधा जाता है एवं मुख्य लता को 7 फुट तक बढ़ने दिया जाता है। इसके पश्चात् दो प्राथमिक शाखाएँ प्रत्येक 4 फुट तक बढ़ने दे, फिर काट दें। प्रत्येक प्राथमिक शाखा पर 16 से 20 तक द्वितीय शाखायें रखते है। इसके पश्चात् तृतीय शाखाओं का प्रति वर्ष कृन्तन करते हैं।

कृन्तन (Pruning)

अंगूर की बेलें उत्तरी भारत में सर्दी के मौसम में सुषुप्त रहती हैं। अतः बेलों की कटाई–छँटाई का समय इसी सुषुप्तावस्था में अर्थात जनवरी माह है। कटाई–छँटाई ना करने पर उपज में कमी आ जाती है। इसलिये फलों को व्यवस्थित, आकार में रखने और अच्छी पैदावार लेने के लिये कटाई–छँटाई करना अति आवश्यक है। दक्षिण भारत में साल में दो बार प्रूनिंग करते हैं पहली सर्द मौसम के आरम्भ में (अक्टूबर–नवम्बर) जिसे फारवार्ड प्रूनिंग कहते हैं तथा दूसरी अप्रैल माह में करते हैं उसे बैक या फाउण्डेशन प्रूनिंग कहते हैं। कटाई–छँटाई करने के लिए निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

किस्म के अनुसार तृतीय शाखाओं पर जो कि एक वर्ष पुरानी होती है, उनके करीब 60 प्रतिशत केन पर कलिकाओं की संख्या परलेट में 4–5 व थॉम्पसन सीडलेस, ब्यूटी सीडलेस में 5–8 रखनी चाहिये तथा शेष 40 प्रतिशत केन पर 2 कलिकायें रखे।

कमजोर, सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को काट देना चाहिये।

जितनी कलियाँ शाखा पर रखनी हो उसके बाद अन्तिम कलिका से आगे आधा इंच तना छोड़कर काटना चाहिये।

कटाई–छँटाई करते समय तने की उखड़ी हुई छाल को हटाकर ताम्र युक्त फफूंद नाशक (ब्लाईटॉक्स 50 या ब्ल्यूकॉपर आदि) का लेप बनाकर लगा दें।

समय समय पर तने के बंधन को ढीला करते रहे तथा तारों को खींचते रहें।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.16

दैहिक विकार (Physiological disorders)

कलियों, फूलों एवं फलों का गिरना (Buds, flowers and fruits drop) : मुख्यतःइन ही समस्याओं जिसमें अंगूर के गुच्छे में उपस्थित फल या तो छोटा रह जाता है या सामान्य आकार प्राप्त नहीं कर पाता जबकि अण्डाशय रहता है इस दशा को मिलारेन्डेज (Millerandage) तथा अंगूर के पुष्प गुच्छों का भली प्रकार फल ठहराव न होने को कोल्यूर (Coulure) कहते हैं। तीन अवस्था में यह समस्या देखी जा सकती है –

1. प्रथम अवस्था में गोल्ड, थॉम्पसन सीडलेस तथा किशमिश बेली किस्मों में पुष्प गुच्छों के खिलने से पूर्व अथवा पूर्णतः खिलने के 5 से 7 दिन बाद गिर जाते हैं।
2. द्वितीय अवस्था में अनिषेचित व क्रियात्मक रूप से कमजोर फल लगने के तुरन्त बाद गिरना शुरू हो जाते हैं और यह क्रिया लगातार चलती रहती है।
3. तृतीय अवस्था में ब्यूटी सीडलेस तथा अर्ली मस्कट किस्मों में फल पकते समय गिरना शुरू हो जाते हैं।

फल गिरने के प्रमुख कारणों में अनुचित ढंग से नत्रजन

का उपयोग, कार्बोहाइड्रेट पोषण, अनुचित फूलों के निषेचन, अधिक फलन, फलों का एक समान समय पर न पकना, फलों की अनियमित वृद्धि एवं ऑक्जीन हार्मोन की कमी आदि हैं। इसके निवारण के लिए निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं –

1. नत्रजन उर्वरकों का उचित मात्रा में प्रयोग उचित समय पर करना चाहिए।
2. फूल खिलने से 7–10 दिन पूर्व शाखाओं या मुख्य तने से 0.5 सेमी. चौड़ी छाल उतार दें।
3. पुष्पन की अवधि में सिंचाई रोक देनी चाहिए।
4. फूल खिलने से पहले 0.2 प्रतिशत बोरिक अम्ल का छिड़काव करें।
5. फलों का रंग बदलने की अवस्था में 500 पी.पी.एम. इथेफोन का छिड़काव करें या गुच्छों को इस घोल में डुबोएँ।

शॉट बेरीज (Shot berries) : इस विकार में अंगूर के फल अविकसित, सख्त व खाने में बेस्वाद हो जाते हैं। यह समस्या उत्तरी भारत में परलेट किस्म में अधिक पायी जाती है। इस समस्या को सही काट–छाँट या दानों एवं गुच्छों के विरलीकरण द्वारा कम किया जा सकता है। जब गुच्छों में 50 प्रतिशत फल बन जाएँ उस अवस्था पर इथेफॉन का 25 पीपीएम की घोल में गुच्छों को डुबोकर उपचारित करें।

पिंक बेरी (Pink berry) : यह महाराष्ट्र में थोम्पसन सीडलेस किस्म का एक मुख्य विकार है। इस विकार में अंगूर के गुच्छों में लगे कुछ दानों पर तुड़ाई के पहले अनचाहा गुलाबी रंग आ जाता है तथा यह दाने खाने में अच्छे नहीं लगते हैं। अधिक तापमान की दशाओं में गुलाबी दाने बनने का विकार अधिक होता है।

चिकन व मुर्गी विकार (Hen and chicken disorder) : इस विकार में गुच्छों के आधार पर दानों का विकास पूर्ण एवं सही होता है परन्तु गुच्छे के अग्रिम भाग में दाने पूर्णतः विकसित नहीं होते हैं। इस विकार का मुख्य कारण बोरान सूक्ष्म तत्व की कमी है। इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत बोरिक अम्ल के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield) :

फलों का रंग जैसे ही हरे से हल्का पीला या लाल में बदलने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फल पकने की स्थिति में आ गये है। इस पकने की अवस्था को वर्जेन (Veraison) कहते हैं। फूल आने के बाद लगभग 3 से 4 माह बाद फल तैयार हो जाते हैं। बीज रहित किस्मों में जिब्रेलिक अम्ल का उपचार उपज की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसके लिये 25–50 पी पी एम अम्ल (25 से 50 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल में, गुच्छों को फल बनने के 10 से 12 दिन बाद डुबोयें। साधारणतया इसकी उपज 10 से 15 किलो प्रति बेल तथा 120–200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। अंगूर के फलों का भण्डारण 0–2 डिग्री सेल्सियस तापमान व 80–85 प्रतिशत आर्द्रता पर 6–8 सप्ताह तक किया जा सकता है। आजकल ग्रेप गॉर्ड के नाम से (सोडियम मेटा बाई सल्फाइट) से उपचारित कागज का पाउच बॉक्स में पैकिंग के समय रखने से भण्डारण अवधि को साधारण तापमान पर भी 3–4 दिन बढ़ा सकते हैं।

सारणी 10.16 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट–नाशीजीव / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–अंगूर का भृंग (पत्ती–बीटल) (Flea beetle - *Scelodonta strigicollis*)	वयस्क चमकीले एवं ताम्र रंग के होते हैं। मादा छाल के नीचे अण्डे देती है। अण्डे से लटें (ग्रब) तथा जड़ों पर निर्वाह करती है। इस कीट की क्रियाशीलता मार्च से नवम्बर तक पाई जाती है। वयस्क कीट नई कली को खाकर काफी नुकसान पहुँचाते है।	केले के बीटल की तरह नियंत्रण करें।
2	चेफर बीटल *(Adoratus sp.)*	कीट रात के समय आक्रमण करता है तथा नरम पत्तियों को खाता है। नई पत्तियों एवं प्ररोहों पर इसका आक्रमण बहुत होता है। वर्षा शुरू होते ही इसका आक्रमण शुरू हो जाता है।	बेर फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
3	पर्णजीवी (थ्रिप्स) (*Rhipiphorothrips cruentatus*)	निम्फ व वयस्क दोनों अवस्था में पत्तियाँ व फूलों आदि का रस चूसते हैं। थ्रिप्स के आक्रमण से पत्तियों पर सफेद धब्बे पड़ जाते हैं तथा फल का आकार भी बिगड़ जाता है।	नियंत्रण पपीते के माहु की तरह करें।
4	मिली बग (*Ferrisia virgata)* एवं स्केल *(Macronellicoccus hirsutus)* कीट	अवयस्क (शिशु) प्रायः नवम्बर दिसम्बर में बाहर निकल कर तने के सहार ` चढ़ते हुए वृक्ष की कोमल टहनियों एव फूलों पर एकत्रित हो जाते हैं तथा रस चूस कर नुकसान पहुँचाते है। इसके द्वारा एक तरह का मीठा चिपचिपा पदार्थ छोड़ा जाता है जिससे काला कवक लग जाता है।	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
5	नाशीजीव– मूल ग्रन्थी (सूत्र कृमि) अंगूर डेगर सूत्रकृमि (जिम्फिनिमा), मूल ग्रंथी सूत्रकृमि व रेनीफार्मड सूत्रकृमि	इसके आक्रमण से जड़े फूलकर गाँठों का रूप धारण कर लेती हैं। इसका प्रकोप हल्की मृदा कण वाली भूमि में ज्यादा होता है। यहाँ डेगर सूत्रकृमि फेन लीफ विषाणु रोग का संचरण करते हैं।	पपीते फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
6	व्याधि– छाछ्या (पाउडरी मिल्डयू या चूर्णी फफूंद) :– यह रोग (*Uncinula* necator) कवक से।	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
7	मृदुरोमिल आसिता (तुलासिता या डाऊनी मिल्डयू): *(Plasmopara viticola)* नामक कवक	प्रभावित पत्तियों की ऊपरी स तह पर अनियमित हल्के पीले से गहरे भूरे रंग धब्बे दिखाई पड़ते है जिनकी निचली सतह पर कवक की वृद्धि मिलती है।	नियंत्रण हेतु गिरी हुई टहनियों को नष्ट कर देना चाहिये। जाइनेब या मेनकोजेब 2 ग्राम अथवा ताम्रयुक्त कवकनाशी 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करने चाहिए।
8	एन्थ्रेक्नोज (श्यामवर्ण) (*Elsinoe ampelina*) नामक कवक	रोग के प्रभाव से लताओं के तनों, शाखाओं, पत्तियों व फलों पर भूरे रंग के धब्बे बनते है जो आकार में बड़े होने पर स्लेटी रंग के हो जाते हैं	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।

आँवला (AONLA)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
इम्बलिका ऑफिसिनेलिस गर्टन.
(Emblica officinalis Gaertn.)
कुल (Family) : यूफोरबिएसी *(Euphorbiaceae)*
गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 28
खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
फल भित्ती (Pericarp)
उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : भारत
फल का प्रकार (Fruit type) : सरस (Berry)

आँवला बहुत ही पौष्टिक फल है और इसमें विटामिन 'सी' (600मिग्रा/100 ग्राम गूदे) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका उपयोग अधिकतर मुरब्बा एवं चटनी के रूप में किया जाता है। आंवले के फलों का स्वाद अम्लीय तथा कसेलापन लिये हुए होता है आयुर्वेदिक चिकित्सा–प्रणाली में आँवले का प्रयोग अनेक प्रकार की दवाएँ जैसे च्यवनप्राश, त्रिफला, आरोग्य वर्धनी इत्यादि के निर्माण में किया जाता है। हमारे देश में मुख्य रूप से आँवले का उत्पादन उत्तर प्रदेश में होता है। उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतापगढ़ जिला पूरे भारतवर्ष में आँवला उत्पादन हेतु प्रसिद्ध है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

यह उष्ण से उपोष्ण जलवायु में बहुत अच्छी तरह पनपता है, आँवले के परिपक्व पौधों को पाले से अत्यधिक हानि होती है एवं ऐसे पौधों पर उच्च तापमान का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गर्म जलवायु फूल आने में सहायक होती है। इसके पौधे अधिक सहिष्णु होने के कारण विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाये जा सकते है। इसके लिये करीब 2 मीटर गहरी भूमि की आवश्यकता होती है। इसके लिये गहरी दोमट भूमि जिसमें उचित जल निकास प्रबन्धन हो, सर्वोत्तम है। क्षारीय भूमियों में (7.0 से 9.0 पी.एच. विद्युत चालकता 9.0 मिली म्होज प्रति सेमी. एवं विनिमयशील सोडियम (ESP) 35–40 प्रतिशत) भी आँवले की खेती की जा सकती है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

भारत में आँवलें की उन्नत किस्मों के परिपक्वन समय के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसे:–

1. **अगेंती किस्में (मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर)**– बनारसी, नरेन्द्र आँवला–9 (एन.ए.–9), बलवन्त, गोमा ऐश्वर्या
2. **मध्यम किस्में (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर)**– फ्रेन्सिस(हाथीझूल),नीलम(एन.ए.–7),कंचन(एन.ए.–4), कृष्णा (एन.ए.–5), अमृत (एन.ए.–6), आनन्द–1, आनन्द–2, आनन्द–3 आदि।
3. **पछेती (मध्य दिसम्बर से मध्य जनवरी)** – चकैया, भावनी सागर (बी.एस.आर.1), लक्ष्मी–52,

प्रवर्धन (Propagation)

इसका प्रवर्धन पैच कलिकायन विधि द्वारा किया जाता है। पुराने वृक्षों का शिखर रोपण (Top working) भी किया जा सकता है।इससे निम्न कोटि के बीजू पेड़ उच्च किस्म में परिवर्तित किये जा सकते हैं।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

इसके पौधों को 8×8 मीटर की दूरी पर जून–जुलाई के महीने में पहले से तैयार किये गये गड्ढों में लगाया जाता है। सिंचाई के लिए पानी की सुविधा होने पर पौधे फरवरी–मार्च में भी लगाये जा सकते है। पेड़ लगाने के लिए 1×1×1 मीटर आकार का गड्ढा निश्चित दूरी पर खोदा जाता है। इन गड्ढों में 20 से 25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद तथा 1 किलो सुपर फॉस्फेट, 50 से 100 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण प्रति गड्ढे के हिसाब से मिलाकर गड्ढों को भरकर पौधा लगाया जाता है।

सारणी 10.17 : खाद एवं उर्वरक

पेड़ों की आयु वर्ष में	मात्रा किलोग्राम प्रति पेड़			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	10	0.22	0.35	0.125
2	20	0.44	0.70	0.250
3	30	0.66	1.05	0.375
4	40	0.88	1.40	0.375
5 और उसके बाद	50	1.10	1.75	0.375

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

आँवले के पौधे को निम्न तालिका 10.17 के अनुसार खाद एव उर्वरक देना चाहिये:

जनवरी –फरवरी के महीने में पेड़ के चारों तरफ फैलाव में नाली बनाकर खाद एवं उर्वरक देना चाहिये। गोबर की खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा जनवरी–फरवरी में दें तथा यूरिया की शेष मात्रा अगस्त में देना लाभदायक है। इसके अतिरिक्त बोरेक्स 0.6 प्रतिशत घोल का छिड़काव फूल लगने की क्रिया को तेज करता है तथा फलों को झड़ने से बचाता है।

सिंचाई एवं अन्तराशस्य (Irrigation & interculture)

प्रारम्भ के तीन वर्षों में कूष्माण्ड कुल की सब्जियों के अतिरिक्त सभी प्रकार की सब्जियाँ ग्वार, मटर, चौला, मिर्च, बैंगन, प्याज आदि ली जा सकती हैं। आँवला के पौधे को वर्षा एवं सर्द ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मार्च के महिने में जब नई कोपलें निकलने लगे तो सिंचाई करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। जून माह तक कुल पन्द्रह दिन के अन्तराल से चार–पाँच सिंचाईयों की आवश्यकता होती है।

फलन (Fruiting)

आंवला में बसंत ऋतु में फूल आते हैं। फूल तीन सप्ताह तक खिलते हैं। फूल निश्चित बढ़वार वाली शाखाओं पर आते हैं। मादा फूल शाखा के ऊपरी सतह पर तथा नर फूल शाखा के निचली सतह पर आते हैं। फूलों में पर–परागण की क्रिया से सेचन होता है। निषेचन के बाद युग्मक सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं जिसे युग्मक सुषुप्त भी कहते हैं गर्मी में फलों में किसी भी प्रकार की वृद्धि का आभास नहीं होता है। युग्मक की सुषुप्तावस्था जुलाई–अगस्त में समाप्त हो जाती है। तथा उसके बाद फलों का विकास शुरू हो जाता है। फल नवम्बर–दिसम्बर में परिपक्व हो जाते हैं। आँवलों में स्वयं असंगतता (Self incompatibility) भी देखी गई है। अतः अच्छे फल के लिय परागक किस्म लगाना आवश्यक होता है। चकैया, एन.ए. 6 और कृष्णा किस्म एन.ए.–7 के लिये परागक का कार्य करती है। अच्छे फलन के लिये आँवला के बाग में 5 प्रतिशत परागक किस्म को लगाना चाहिए।

संधाई व काट–छाँट (Training and pruning)

आँवले के पौधों को अच्छा ढांचा देने के लिए प्रथम दो वर्ष तक पौधे को जमीन से लगभग 60–70 सेमी. की ऊँचाई तक अकेले बढ़ने देना चाहिए। इसके बाद दो से चार शाखाएँ विपरीत दिशाओं में निकलने देनी चाहिए। अनावश्यक शाखाओं को शुरू में हटाते रहना चाहिए। इसके बाद चार से छः शाखाओं को चारों दिशाओं में निकलने दें। आँवले में फल आने पर नियमित काट–छाँट की आवश्यकता नहीं होती। सूखी, रोगी, टूटी हुई, कमजोर व एक–दूसरे में फंसी हुई टहनियों को हटाते रहना चाहिए।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.18

आन्तरिक काला धब्बाः– यह बोरोन की कमी से होता है व फल अन्दर से कालापन लिये हुए होता है। यह विकार दूसरी

सारणी 10.18 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र. स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–छाल भक्षक कीट (*Inderbela tetraonis*)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
2	शूट गाल मेकर (Shoot gall maker)	पेड़ की डालियों का अग्रिम भाग एक गाँठ के रूप में फूल जाता है जिसमें काले रंग का कीड़ा पाया जाता है।	गाँठ को तोड़ कर जला देवें तथा क्लोरोपाइरिफॉस 125 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल कर जून–जुलाई में छिड़काव करें
3	व्याधि–आँवले का रोली रोग (रस्ट) (*Revenelia emblica)*	इसके प्रकोप से अगस्त माह में पत्तियों पर रोली के धब्बे बन जाते हैं। पत्तों पर भूरे धब्बे बनते हैं जो कभी–कभी पूरे फल पर फैल कर काले हो जाते हैं। रोगी फल पकने से पहले ही झड़ जाते हैं जिससे बहुत हानि होती है।	नियंत्रण हेतु 2 ग्राम घुलनशीन गंधक अथवा क्लोरोथेलोनिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से तीन छिड़काव जुलाई माह से 15 से 30 दिन के अन्तराल से करने पर फलों के रोग का लगभग पूर्ण नियंत्रण हो जाता है।
4	ब्लू मोल्ड (Blue mould) कवक (*Penicillium digitatum, P. citrinum & P. islandicum*)	फलों पर पहले भूरे रंग के जल युक्त चकते दिखाई पड़ते हैं। बाद में पीले, बैंगनी तथा नीले खण्ड में विभाजित हो जाता है। फलों से पीले रंग का तरल पदार्थ निकलता है और दुर्गन्ध आती है।	फलों को बोरेक्स या सोडियम क्लोराईड के घोल में उपचारित कर देने से संग्रहण के दौरान रोग नहीं फैलता। फलों की तुड़ाई उपरान्त 0.2 प्रतिषत बेलीटॉन या टोप्सीन एम से उपचारित करने पर 10 दिन तक इस रोग का नियंत्रण हो जाता है।

किस्मों की अपेक्षा फ्रांसिस किस्म में अधिक होता है। इसके नियंत्रण हेतु 6 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव प्रथम अप्रैल, द्वितीय जुलाई एवं तृतीय सितम्बर माह में करें।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

आँवले का फल नवम्बर–दिसम्बर में पक कर तैयार होता है। परिपक्वता पर आँवले का रंग कुछ सफेदी लिए हुए हरा होता है। आँवले के फलों की तुड़ाई के समय फल जमीन पर न गिरने पाये अन्यथा ऐसे फलों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं और बाद में भण्डारण के दौरान ऐसे फलों के सड़ने की सम्भावना रहती है जो दूसरे फलों को भी प्रभावित करते हैं। कलमी आँवले का पेड़ 4 से 5 वर्ष की आयु में फल देने लगता है। फूल मार्च–अप्रैल में आते हैं तथा फल नवम्बर–दिसम्बर में तोड़ने के लायक हो जाते हैं। एक पूर्ण विकसित कलमी आँवले का पेड़ 50–100 किलो फल देता है। आँवले के फलों की भण्डारण अवधि 15 दिनों तक बढ़ाने हेतु 12 डिग्री सेल्सियस तापमान व 90% आपेक्षिक आर्द्रता रखें। पानी में डुबोकर रखे तथा पानी को बदलते रहने से भी भण्डारण अवधि 1–2 सप्ताह तक अच्छी अवस्था में फलों को रख सकते हैं। वहीं नमक के विलयन में रखकर 15 दिन तक फलों को रख सकते हैं।

अनार (POMEGRANATE)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
प्यूनिका ग्रेनेटम एल. *(Punica granatum* L.*)*

कुल (Family) : पुनिकेसी (Punicaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 18

खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
बीज आवरण (Aril)

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : इरान (Iran)

फल का प्रकार (Fruit type) :
बालूस्ता सरस (Balusta berry)

अनार उपोष्ण जलवायु का फल वृक्ष है, यह सूखा सहनशील होने के साथ–साथ कम लागत में अधिक आमदनी देता है। अनार के फल कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, लौह तत्व, सल्फर के अच्छे स्रोत हैं। इसका प्रयोग खाने एवं रस के रूप में तथा सुखाकर किया जाता है। हमारे देश में इसकी खेती मुख्य रूप से महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान एवं तमिलनाडु में की जाती है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

अनार एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है तथा पाला व शुष्कता के प्रति सहिष्णु है। फल विकास एवं पकने के समय गर्म एवं शुष्क जलवायु होने पर उत्तम गुणवत्ता के फल लगते हैं। कम सर्दी वाले क्षेत्रों में यह पर्णपाती होता है जबकि उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में सदाबहार होता है।जल निकास युक्त गहरी, भारी दोमट भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। भूमि की गहराई एक मीटर से कम नहीं होनी चाहिए। अनार के पौधे 6.0 डेसी साइमन्स प्रति मीटर (dSm^{-1}) तक की लवणता तथा 6.78 प्रतिशत विनिमयशील सोडियम (ESP) को सहन कर सकते हैं।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

अनार की उन्नत किस्मों में नरमबीज (soft seeded) वाली किस्में जैसें:– गणेश, जालौर सीडलेस, मृदुला, जोधपुर रेड, जी–137 के साथ वर्तमान में गहरे लाल बीजावरण वाली भगवा (सिन्दूरी) किस्म भारत वर्ष में उगाई जा रहीं है।

अन्य किस्में फूले अरक्ता, कन्धारी, मस्कट, ज्योति, जी. के.वी.के.–1, पी–26 सुपर भगवा, वन्डर इत्यादि हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

अनार के पौधे कलम एवं गूटी द्वारा तैयार किये जाते हैं। आजकल टिश्यू कल्चर से भी व्यवसायिक स्तर पर पौधे तैयार किये जा रहे है। कलम लगाने के लिये फरवरी माह अधिक उपयुक्त है वहीं गूटी बाँधने का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु में होता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

पौधे लगाने का अच्छा समय वर्षाकाल है परन्तु सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो तो अनार के पौधे फरवरी मार्च में भी लगाये जा सकते हैं। पौधे लगाने के एक माह पूर्व 5×5 मीटर की दूरी पर 60×60×60 सेमी. आकार के गड्ढे खोद लेने चाहिये। इसको 10–15 दिन खुला रखने के बाद ऊपर की मिट्टी में अच्छी सड़ी हुई 15–20 किलो गोबर की खाद, आधा किलो सुपर फॉस्फेट तथा 50–100 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिलाकर गड्ढे को भर देना चाहिये तथा सिंचाई कर देनी चाहिये। वर्षा के शुरू होने पर उनमें पौधे लगा देने चाहिये।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

अनार के पौधों को निम्न तालिका 10.19 के अनुसार खाद एवं उर्वरक देवें।

सारणी 10.19 : खाद एवं उर्वरक

आयु वर्षों में	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा में			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	8–10	0.10	0.25	0.50
2	16–20	0.20	0.50	0.50
3	24–30	0.30	0.75	1.00
4	32–40	0.40	1.00	1.50
5 वर्ष और उसके बाद	40–50	0.50	1.25	1.50

देशी खाद सुपरफास्फेट की पूरी मात्रा एवं यूरिया की आधी मात्रा फूल आने के करीब 6 सप्ताह पूर्व देवें। यूरिया की शेष आधी मात्रा फल बनने पर देवें।

सिंचाई एवं अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture)

पौधे लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिये। फिर रोपाई के 10–15 दिन तक हर दो तीन दिन बाद पौधों की सिंचाई आवश्यक है। गर्मी के मौसम में सिंचाई 7–10 दिन के अन्तर पर करें एवं सर्दी में आवश्यक हो तो 15–20 दिन के अन्तर पर करनी चाहिये। ड्रिप सिंचाई के तहत (0.8 वाष्पीकरण स्थिरांक के अनुसार) सर्दियों में एक दिन अन्तराल पर (32 से 38 लीटर प्रति दिन की दर पर अक्टूबर से जनवरी तक) तथा गर्मियों में नियमित (55 से 60 लीटर प्रति दिन फरवरी से मई तक पानी दें) बाग को खरपतवार से मुक्त रखने के लिये समय समय पर निराई गुड़ाई करना आवश्यक होता है। सर्दी की ऋतु के अन्त में सूखी एवं रोग ग्रस्त टहनियों को काटकर अलग कर देना चाहिये।

आरम्भ के तीन वर्षों तक बाग में कुष्माण्ड कुल की सब्जियों के अतिरिक्त सभी प्रकार की सब्जियाँ जैसे मटर, ग्वार, चौलाई, मिर्च, बैंगन आदि ली जा सकती हैं।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & Praning)

अनार में संधाई बहुतना विधि अपनाते हुए एक स्थान पर 4 तने रखकर अन्य शाखाओं को हटाते रहें इसके पश्चात छठे साल से इन चारों तनों के स्थान पर नये तने विकसित करें जो आंठवें साल फल देना प्रारम्भ कर देंगें। काट–छाँट हमें समय ≤ पर सूखी, टेड़ी–मेढ़ी, रोगी टहनियों को हटाते रहें तथा शाखा के शीर्ष भाग को हल्की काट–छाँट से हटाने (Nipping) पर पार्श्व शाखाओं को बढ़वार मिलती है।

फलन (Flowering)

अनार वर्ष में तीन बार फलता है।

1. फरवरी से मार्च (अम्बे बहार)2. जुलाई से अगस्त (मृग बहार) 3. अक्टूबर से नवम्बर (हस्त बहार)

तीनों बहारों में से एक इच्छित बहार जल उपलब्धता, बाजार भाव व फल गुणवत्ता आदि के अनुरूप चयन किया जाता है। वर्षा जल का समुचित उपयोग हेतु मृग बहार उचित है। जिसके लिए अप्रैल माह में पानी रोक देते हैं, मई में गड्ढों की खुदाई तथा खाद व उर्वरक दिया जाता है तत्पश्चात् जून में 2 हल्की सिंचाइयाँ जुलाई–अगस्त में पुष्पन में मदद करती हैं।

इनमें से जुलाई अगस्त वाली फसल अच्छी होती है तथा फल भी अच्छे होते हैं। पौधे की मजबूती एवं वृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि आरम्भ के तीन वर्ष तक फसल नहीं ली जाये अतः इस समय यदि पेड़ों पर फूल आये तो भी उन्हें तोड़ देना चाहिये। रसायनों में इथरेल (Ethrel) 1–2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करके भी पौधे को तान (Stress) में लाया जा सकता है।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.20

फल फटना : इस दैहिक विकार समस्या का कारण मिट्टी में नमी का उतार–चढ़ाव व बोरान तत्व की कमी है। रोकथाम हेतु नियमित अन्तराल पर सही मात्रा में बाग में सिंचाई का प्रबन्ध करें तथा कुछ रसायनों में बोरान (0.2 प्रतिशत) या जिब्रेलिक अम्ल (40 पी.पी.एम.) का पर्णीय छिड़काव फल विकास अवस्था पर करें। जहाँ वातावरणीय समस्या हो वहाँ सहनशील किस्में जैसे बेदाना, रूबी, जोधपुर रेड उगायें। फलों को पकने की जल्दी अवस्था पर तुड़ाई करें।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

फलों का रंग जैसे ही हरे से हल्का पीला या लाल में बदलने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फल पकने की स्थिति में आ गया है। फूल आने के बाद लगभग 5 से 6 माह बाद फल तैयार हो जाते हैं। फलों को अंगुलियों से थपथपाने पर धात्विक आवाज (metalic sound) आती है। अनार के अच्छे विकसित पौधे से जिसकी उम्र 5–6 साल की हो, 20 से 22 किलो फल प्रति पौधे के हिसाब से प्राप्त हो जाते हैं। कमरे के तापमान पर 1 सप्ताह भण्डारण आसानी से कर सकते हैं यह फसल के समय व किस्म पर निर्भर करता है। अनार के फलों की 4.5 डिग्री सेल्सियस तापक्रम एवं 80–85 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता पर 1–1.5 माह तक आसानी से भण्डारित कर सकते हैं।

सारणी 10.20 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र. स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–छाल भक्षक कीट (Bark eating cater pillar : *Inderbela tetraonis*)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
2	अनार की तितली (Pomegranate butterfly : *Virachola (Deudorix) isocrates*)	मादा तितली पुष्प कली पर अण्डे देती है। इनमें लटें निकल कर बनते हुए फलों में प्रवेश कर जाती हैं। फल को अन्दर ही अन्दर खाती हैं फलस्वरूप फल सड़ कर गिर जाते हैं।	नियंत्रण हेतु बाग को साफ सुथरा रखना अति आवश्यक है। फूल व फल बनते समय कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 2 से 3 ग्राम या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. दो मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। फलों को थैली से ढकना (Fruit wrapping) भी कारगार उपाय है।
3	मिली बग	अवयस्क (शिशु) प्रायः नवम्बर दिसम्बर में क्रियाशील रहता है।	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
4	पत्ती मोड़क (बरूथी) (*Aceria granati*)	सितम्बर माह में बरूथी के प्रकोप से पत्तियाँ सिकुड़ कर मुड़ जाती हैं और पौधे की बढ़वार व फलन बुरी तरह प्रभावित होती है।	नियन्त्रण हेतु सितम्बर माह में क्यूनालफॉस 25 ई.सी. दो मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिये। दूसरा छिडकाव 15 दिन बाद अवश्य दोहरायें।
5	व्याधि– पत्ती धब्बा एवं फल सड़न (*Cercospora punicae*)	वर्षा शुरू होते ही पत्तियों पर छोटे छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं तथा बाद में धब्बे भूरे काले रंग के हो जाते हैं।	वातावरण में अधिक नमी होने से फल एवं कलियों पर काले धब्बे बन जाते हैं तथा धीरे–धीरे रोगी फल सड़ जाते हैं। नियंत्रण हेतु टोपसिन एम एक ग्राम या जाइनेब का दो ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिये।
6	जीवाणु धब्बा (तेलियाँ धब्बा) जीवाणु (*Xanthomonas axonopodis* pv. *punicae*)	पत्तियों, टहनियों व फलों पर भूरे रंग के तेलिये धब्बें बनते हैं जो बाद में भूरे रंग में बदल जाते हैं तथा फल फट जाता है।	इस रोग के नियंत्रण में स्वस्थ पौधों के चयन के साथ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर व स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 पी.पी.एम. का छिड़काव करना चाहिये। खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए।

खजूर *(DATEPALM)*

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
फीनिक्स डक्टाइलीफेरा एल.
(*Phoenix dactylifera* L.)

कुल (Family) : पामी या एरेकेसी
(Palmae or Arecaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : X=18 2n=36

फल प्रकार (Fruit type) : अष्ठिल (Drupe)

खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
फल भित्ती (Pericarp)

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) :
खाड़ी प्रदेश–ईराक (Iraq)

खजूर एक प्राचीनतम फल वृक्ष है जो भारत के कच्छ (गुजरात) इलाके में बहुतायत में है। राजस्थान के जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर तथा जोधपुर जिलों में खेती की जा रही है। इसके फल कार्बोहाइड्रेट्स (60–65%), लौह तत्व से भरपूर होते हैं जिन्हें ताजे फल (डोका अवस्था पर), मुलायम (पिंड) व सूखाकर (छुआरा) उपयोग में लिया जाता है।

जलवायु व मृदा (Climate & soil) :

खजूर की सफल खेती के लिये लंबी अवधि तक ग्रीष्म काल, बड़े दिन, पाला रहित वातावरण, पुष्पन व फलन के समय वर्षा रहित, मौसम आवश्यक है। एक अरबी कहावत के अनुसार इसके पौधे का सिर आग में व पाँव पानी में होना चाहिए । ऐसा क्षेत्र जहाँ 3300 उष्मा इकाई (हीट यूनिट) पुष्पन से फल परिपक्वन हो तो इसके उत्पादन के लिए अच्छा रहता है।

खजूर के अच्छे उत्पादन के लिए मृदा गहरी, रेतीली व दुमट उपयुक्त मानी जाती है। यह लवणीय तथा क्षारीय मृदाओं में आसानी से लगाया जा सकता है। 8–10 पी.एच. मान तक वाली भूमि में भी लगाया जा सकता है। ये मृदा के 4 प्रतिशत लवण सान्द्रता को सहन कर सकता है।

उन्नत किस्में (Improred varieties)

उपयोग के आधार पर वर्गीकरण कर सकते हैं:

ताजे फल खाने में (consumed as fresh)	अगेती व मध्यम मौसम की किस्में जिनमें खरास नहीं होती या गला नहीं पकड़ती तथा मीठी (25–45 % TSS) होती है। जैसे हलावी, खुनैजी (लाल रंग की), बरही, खलास आदि।
मुलायम फल वाली (Soft date)	जिनमें सुक्रोज शर्करा पूर्ण रूप से अपघटित या इन्वर्ट शर्करा में बदल जाती है। जैसे–जाहदी, हलावी, जागलूल, खदरावी आदि से पिंड खजूर बनाये जा सकते हैं।
सूखे फल या छुआरा बनाने वाली (Dry date)	इस प्रयोजन की किस्मों में आकार बड़ा व गूदा अधिक होना चाहिए जैसे जाहदी, मेडजूल, शामरान आदि।
विभिन्न प्रसंस्करण (Processing)	इनमें प्रयुक्त किस्मों में आकर्षक रंग व गूदा व उत्पादन से भरपूर होनी चाहिए। जैसे–हियानी(रंगीन), चीप–चेप, सूरिया, जामली, सगाई आदि।
नर मंजरी हेतु (Male perent)	परागण हेतु किस्मे जैसे घनामी, मधसरी, आलन सीटी आदि।

प्रवर्धन (Propagation) : वैसे तो खजूर का प्रवर्धन बीज द्वारा भी किया जाता है परन्तु बीजू पौधों की गुणवता कायिक विधि द्वारा किये गये पौधों की तुलना में कम होती है। खजूर में कायिक प्रवर्धन अन्तः भूस्तारियों (ऑफ शूट) द्वारा तैयार किया जाता है। मुख्य वृक्ष से सकर्स अलग करते समय यह ध्यान रहें कि उनका वजन कम से 6 किलोग्राम अवश्य हो। खजूर के बगीचे में नर एवं मादा पौधों का अनुपात 1 : 10 का रखना चाहिये। नर पौधों का अनुपात अधिक हो तो उन्हें हटा देना चाहिए। आजकल उत्तक संवर्द्धन से खजूर के गुणवत्ता युक्त पौधे तैयार किये जा रहे हैं तथा इन पौधों की खेत में स्थापना दर ऑफसूट पौधों की तुलना में अधिक होती है। परन्तु सोमाक्लोनल विविधता इन पौधो में देखने को मिलती है।

पौध रोपण विधि (Planting method) : ग्रीष्म काल (जून माह) में 1×1×1 मीटर आकार के 8×8 मीटर की दूरी पर गड्ढे खोद लेवें व गोबर की सड़ी खाद लगभग 25 किलोग्राम, 200 ग्राम सुपर फास्फेट व 50 ग्राम म्यरेट ऑफ पोटाश तथा 50 ग्राम क्युनालफॉस प्रति गड्ढा मिलाकर जुलाई अगस्त माह में रोपण करें। रोपाई के समय सकर्स को भूमि से 15 सेमी. ऊपर रखें व ध्यान रहे कि सिंचाई का पानी तने को छूने न पावें।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) : खजूर के फल देने वाले पौधे को 30 व 40 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद सितम्बर माह में देवें। इसके अलावा प्रतिवर्ष 600 ग्राम नत्रजन, 100 ग्राम फास्फोरस तथा 700 ग्राम पोटाश प्रति वृक्ष मार्च अप्रैल माह में देना चाहिए।

सिंचाई व अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture):

खजूर हेतु कहावत "सिर आग में पाँव पानी में (Head on fire and feet in water) होना चाहिए अर्थात् पानी की आवश्यकता ज्यादा है। अतः पौध रोपण के शुरूआत में नियमित तथा बाद में महीने में 2 बार सर्दियों में व 4 बार गर्मियों में देते रहें। फल बनते समय एवं बढ़वार के समय भूमि में पर्याप्त नमी बनाये रखें। अन्तराशस्यन में खजूर के वृक्षों के साथ बहुखंडीय (multistory) फलवृक्ष व अन्य पौधे रोपित कर सकते हैं जैसे अनार, फालसा,

पपीता व दलहनी फसलें जिससे बगीचे की आय में बढ़ोतरी व जगह का उपयोग होगा।

पुष्पन व फलन (Flowering & fruiting) खजूर में नर पुष्प पहले परिपक्व होते हैं (Protoandry)। अतः इन पुष्पक्रमों (Spadix) को काटकर अखबार पर (पराग रज) पाऊडर इकट्ठा कर लें तथा कुछ समय बाद निकलने वाले मादा पुष्पों पर रूई के फवे की सहायता से या डस्टर मशीन द्वारा कृत्रिम परागण करने से फलों की संख्या व गुणवत्ता बढ़ने से अधिक उपज प्राप्त होती है इस तरह पराग कणों का फल की गुणवत्ता बढ़ाने के प्रभाव को मेटाजिनिया (metaxenia) प्रभाव कहते हैं।

खजूर में पुष्पन व निषेचन के बाद फल बनना आरम्भ होता है, फल विकास की निम्न अवस्थाएँ होती है:

1. **गंडोरा (कीमरी)** – फल कच्चे हरे व कठोर होते हैं।
2. **डोका (खलल)**– फल पूर्ण विकसित ठोस पीले या लाल (किस्मानुसार) रंग के होते हैं।
3. **डेंग (रूतब)**– फलों का शीर्ष भाग मुलायम होना शुरू हो जाता है।
4. **पिंड (तमर)**– पूर्णतः मुलायम फलों की अवस्था है।

राजस्थान में मुख्यतः डोका अवस्था पर ही फलों की तुड़ाई करते हैं क्योंकि इसकी पिंड अवस्था जुलाई–अगस्त में आ पाती है तथा उस समय वर्षा होने से फल खराब होने लगते हैं।

संधाई व कृन्तन (Training and pruning): खजूर एक बीज पत्री (Monocot) वृक्ष है। अतः शुरूआत में पार्श्व से ऑफ शूट निकालते रहने से एकल तना युक्त वृक्ष बनेगा जिस पर फलों के गुच्छे भरपुर होंगे तथा इनके मध्य वायु संचार अच्छा रहें इस हेतु जून माह में सूखी, पुरानी पत्तियों को काट देना चाहिए तथा प्रति वृक्ष 75–100 पत्तियाँ रखें।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.21

तुड़ाई व उपज (Harvesting & yield) : खजूर रोपण के 6–7 वर्ष बाद व्यावसायिक फलन में आता है। किस्म के अनुसार रंग परिवर्तन होने पर डोका अवस्था पर फलों की तुड़ाई करते हैं प्रति वृक्ष 75–100 किग्रा फल प्राप्त होते हैं। ताजे फलों को 1–1.5 डिग्री सेल्सियस व 85–90% आर्द्रता पर तथा सूखे फल भी इसी तापमान पर परन्तु 65–70% आर्द्रता पर क्रमशः 1 माह व 1 साल तक रख सकते हैं।

पिंड खजूर (Soft date) बनाने हेतु डोका अवस्था में तोड़े फलों को ब्लाचिंग (उबलते पानी में आधा मिनट रख) कर 40 डिग्री सेल्सियस तापमान पर विधुत चालित भट्टी (डिहाइड्रेटर) में रखते हैं तथा छुआरा (dry dates) बनाने हेतु डोका अवस्था के फलों को 5 मिनट ब्लाचिंग कर उन्हें विद्युत चालित भट्टी में 48–52 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 70–90 घण्टे या 80–120 घण्टे धूप में सुखा दें।

सारणी 10.21 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–ताड़ का घुन (Palm weevil) रायनोसेरस बीटल (*Oryctes rhinoceros*)	व्यस्क भृंग चमकदार काले–भूरे रंग का होता है। इस कीट की सूण्डी पौधे की जड़ों को नुकसान पहुँचाती है। प्रकोप से पौधा पीला पड़ जाता है।	प्रबंधन में फेरामोन ट्रेप (ल्यूर से आकर्षित करना चाहिए) व वयस्क को लाइट ट्रेप से तथा पौधे के पास नेफ्थलीन बोल्स रख देने से इसकी दुर्गंध से बीटल नहीं आता है तथा रसायनों में डाइजीनोन 20 ई.सी. दवा 2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
2	रेड पाम वीविल इल्ली (*Rhynchophorus ferrugineus*)	वयस्क लाल भूरे रंग का होता है। लार्वा एक भूरे रंग के सीर के साथ सफेद–पीला होता है। ये कीट जड़ को नुकसान पहुँचाता है तथा अन्दर से खोखला कर देता है।	प्रबंधन में संगरोध निषिद्ध (Quarantine) अपनाना चाहिए तथा प्रिडेटर (पलेटीमेरिस ओर्यक्ट्स) का उपयोग भी हितकर रहता है। रासायनिक उपचारों में डाइमीथोएट–30 ईसी का छिड़काव हितकारी है।
3	खजूर का स्केल (White palm-*Parlatoria blanchardii*) (Red palm -*Phoenicoccus marlatti*)	यह कीट नये युवा पौधे में अधिक नुकसान पहुँचाता है। इस कीट के निम्फ (Nimph) एवं वयस्क पत्तियों व नयी वृद्धियों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देते हैं। प्रकोप मई–जून से शुरू होकर नवम्बर–दिसम्बर में गंभीर रूप ले लेता है।	प्रबंधन उपायों में प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग (लेडी बर्ड बीटल, क्राइसोपर्ला व प्रईंग मेंटिड आदि) तथा अगस्त माह में ईमीडाक्लोप्रिड 17 एस एल का 0.5 मिली प्रति लीटर छिड़काव करें।
4	खजूर का मोथ (Lesser date moth -*Batrachedra amydraula*)	कीट की लार्वा अपरिपक्व फलों को नुकसान पहुँचाते तथा उपज में भारी गिरावट आती हैं इस कीट का आक्रमण अप्रैल से अगस्त माह तक होता है तथा वर्षा आने पर सघनता बढ़ जाती है।	नियंत्रण उपाय में स्पाइनोसाइड का 0 .03 प्रतिशत का छिड़काव कारगर है।
5	व्याधि– अंतः भूस्तारी पौध गलन (Offshoot/ sucker rot) (*Fusarium*) तथा (*Botryodiplodia*) वंश की कवक	प्ररोह में गलन बड़ें खजूर के वृक्षों में भी धीरे–धीरे क्षय की ओर होते हैं इस समस्या को बायूद (Bayond) रोग कहते हैं।	रोग प्रबंधन में हमेशा सर्कस / ऑफ सूट स्वस्थ मातृ पौधे से ही लेना चाहिए तथा ऑफ सूट को कार्बेन्डाजिम (0.2%) या रिडोमिल (0.15%) कवकनाशी घोल में 2–5 मिनट डुबोकर ही रोपण करें।
6	ग्रेफियोला पत्ती धब्बा रोग स्मट कवक (False smut fungi) (*Graphiola phoenicis*)	पत्ती की सतह पर छोटे भूरे कत्थई रंग के धब्बे दिखायी देते हैं जो बाद की अवस्था में पत्तियों के दोनों ओर डंठल पर फैल जाते हैं तथा पत्तियाँ पीली होकर गिरने लगती हैं।	रोग प्रबंधन में ग्रसित भागों की काट–छाँट कर जला दे या गाड़ दे तथा ताम्र युक्त कवकनाशी जैसे कॉपर ऑक्सी क्लोराइड (COC) या ब्लूकॉपर का 2–3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का 15 दिन के अन्तराल पर दो–तीन बार छिड़काव करें।
7	खामेज रोग (Khamedj) कवक मूंगीनेला वंश की कवक (*Munginella sp.*)	पुष्पक्रम जिसे स्पेडिक्स कहते हैं उसका रोग है तथा लगातार वर्षा वाले क्षेत्रों तथा बिना सार–सम्भाल वाले क्षेत्रों में यह रोग होता है।	इस रोग में पुष्प मंजरी (Spathe) पर भूरा क्षेत्र बनता है तथा बाद में पूरे पुष्पक्रम के आन्तरिक भागों में फैल जाता है । इस रोग का संक्रमण एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर परागकणों द्वारा जाता है। रोकथाम में ऐसे संक्रमित पुष्पक्रमों को तोड़कर जला देना चाहिए व बोर्डो मिक्सर के 1 प्रतिशत विलयन का छिड़काव करना चाहिए।

बेल (BAEL)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
एगेल मॉरमिलोस (एल.) कोर्रिया.
(Aegle marmelos (L.) Correa.)

कुल (Family) : रूटेसी (Rutaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 18

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : भारत

फल का प्रकार (Fruit type) :
रूपान्तरित सरस एम्फीसारका

खाने योग्य भाग (Edible part) :
रसीला प्लेसेन्टा (Succulent Placenta)

बेल को श्रीफल, बेलपत्र, बंगाल क्वींस आदि नामों से भी जाना जाता है। बेल के फल में राइबोफ्लेबिन, विटामिन 'ए' एवं कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। बेल का औषधीय गुण मुख्य रूप से इसमें पाये जाने वाले मारमेलोसिन (marmelosin) तत्व के कारण होता है। मारमेलोसिन पेट की बीमारियों के उपचार में उपयोग में लिया जाता है। इसके गूदे से शर्बत, स्क्वैश एवं मारमेलेड बनाया जाता है। बेल की पत्तियों को हिन्दू धर्म में शिवजी भगवान को अर्पित किया जाता है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & Soil)

बेल इतना सहिष्णु पौधा होता है कि हर प्रकार की जलवायु में भली–भांति उग जाता है। विशेषतः यह शुष्क जलवायु को अधिक पसन्द करता है। इसमें पाले को सहन करने की भी क्षमता होती है। यह फल वृक्ष–7° सेंटीग्रेड तक तापमान को भी सहन कर लेता है। बेल हर प्रकार की भूमि में अच्छी तरह उगता है लेकिन अच्छी खेती व पैदावार के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। यह अम्लीय एवं क्षारीय (5–10 पी.एच मान) भूमि पर भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह फल वृक्ष इतना अधिक सहिष्णु होता है कि रेगिस्तान में 2–3 महीने मिट्टी में दब जाने के बाद भी पुनर्जीवित हो जाता है। यह भूमि में 9.0 डेसी सायमन्स प्रति मीटर (dSm^{-1}) तक ही लवणता को भी सहन कर लेता है।

उन्नत किस्में (Improved varieties) विभिन्न संस्थानों से विकसित किस्में निम्न है।:

1. नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबादः– नरेन्द्र बेल–5(एन.बी.–5),एन.बी.–9
2. केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊः– सी.आई. एस.एच.बी.–1, सी.आई.एस.एच.बी.–2
3. जी.बी.पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगरः– पंत उर्वशी, पंत सुजाता, पंत अपर्णा एवं पंत शिवानी
4. केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर :– गोमा यशी, थार दिव्या व भार नीलकण्ठ

अन्य किस्मों में कागजी (फल का छिलका कागज जैसा पतला), मिर्जापुरी आदि हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

बेल का प्रवर्धन साधारणतया बीज द्वारा ही किया जाता है। बेल का वानस्पतिक प्रवर्धन पैच कलिकायन द्वारा भी सरलता तथा सफलतापूर्ण किया जा सकता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

बेल के पौधों का रोपण वर्षा के प्रारम्भ में करना चाहिए । गड्ढों का आकार 75 × 75 × 75 सेमी. तथा एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे की दूरी 6 मीटर रखनी चाहिए। वर्षा शुरू होते ही इन गड्ढों को दो भाग मिट्टी तथा एक भाग खाद से भर देना चाहिए। एक–दो वर्षा हो जाने पर गड्ढे की मिट्टी जब खूब बैठ जाए तो इनमें पौधों को लगा देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

साधारणतया यह पौधा बिना खाद और पानी के भी अच्छी तरह फलता–फूलता रहता है, लेकिन अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए इसमें उचित खाद की मात्रा उचित समय पर देना आवश्यक है। एक फलदार पेड़ के लिए 500 ग्राम नत्रजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति पेड़ देना चाहिए। चूंकि बेल में जस्ते की कमी के लक्षण पत्तियों पर आते हैं, अतः जस्ते की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव जुलाई, अक्टूबर और दिसम्बर में करना लाभदायक रहता है।

सिंचाई एवं अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture)

बेल का वातावरण के प्रति सहिष्णु होने के कारण किसी विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है फिर भी आरम्भ में जब पौधे छोटे–छोटे होते हैं तो गर्मियों में उनकी महीने में दो बार सिंचाई कर देनी चाहिए। लेकिन जब पौधा फलत में आ जाता है

तो पूरी गर्मियों में 2–3 बार सिंचाई कर देना काफी होता है। थाँवलों को हमेशा निराई–गुड़ाई करके साफ–सुथरा रखना चाहिए।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning)

बेलपत्र में संधाई का कार्य शुरू के 2–3 वर्षो में करते हैं जिसमें यह ध्यान रखा जाता है कि भूमि सतह के 2–3 फीट से कोई शाखा न पनपे तथा बाद में इस मुख्य तने पर 4 शाखाओं का चुनाव करें। काट–छाँट में प्रतिवर्ष सूखी, टेड़ी–मेढ़ी, रोगी आदि शाखाओं को काट कर निकाल दें यह कार्य फल तुड़ाई के साथ ही कर सकते हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection)

- बेल की कोमल शाखाओं तथा पत्तियों पर पर्ण सुरंगक (Leaf Minor) का आक्रमण होता है लेकिन इससे विशेष नुकसान नहीं पहुँचता है फिर भी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में क्यूनालफॉस 25 ईसी के छिड़काव से रोका जा सकता है।
- बेल के पेड़ पर रोगों का प्रकोप बहुत कम होता है। एकत्रित फलों के गूदे में कभी–कभी गलन (Internal rot) की बीमारी लग जाती है, जिससे फल अन्दर ही अन्दर खराब हो जाता है इसे कम करने के लिए फलों को सावधानी पूर्वक तोड़ा जाये जिससे इन्हें चोट न लगे तथा 0.3 प्रतिशत डाइथेन जेड 78 के घोल से फलों को तोड़ने के बाद उपचारित करके ठीक किया जा सकता है।
- कभी–कभी फल पकने से पूर्व फट जाते हैं, जो या तो सूक्ष्म तत्वों की कमी से या फिर अनियमित सिंचाई के कारण होता है। फल फटने से रोकने हेतु पोटेशियम सल्फेट 4 प्रतिशत का वर्ष में तीन बार पर्णीय छिड़काव अगस्त, नवम्बर व फरवरी माह में करें तथा फल विकास एवं परिपक्वता के समय नमी का अभाव नहीं होना चाहिए। फलों को श्रींक, पॉली थीन से लपेटकर भी फटने की दर कम कर सकते है।)

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield

बीजू पौधे 7–8 वर्ष बाद फलने लगते हैं लेकिन चश्में से तैयार पौधों में फलत 4–5 वर्ष में शुरू हो जाती है। बेल का पेड़ लगभग 15 वर्ष के बाद व्यवसायिक रूप से फलन में आता है। बेल का डण्ठल इतना मजबूत होता है कि फल पकने के बाद भी पेड़ पर काफी दिन तक लगे रहते हैं। फल ठहराव से फल परिपक्वता में लगभग 10–11 महीने लगते हैं। कच्चे फलों का रंग हरा तथा पकने पर पीला सुर्ख हो जाता है। जब फलों में पीलापन आना शुरू हो जाए उस समय उनको डण्ठल के साथ तोड़ लेना चाहिए। इस तरह के फल 10–12 दिन में अच्छी तरह पककर तैयार हो जाते हैं। दस से पन्द्रह वर्ष पुराने पेड़ से 200–400 फल प्राप्त होते हैं। बेल के फलों का साधारण तापमान पर 2 सप्ताह रखा जा सकता है तथा शीत संग्रहण में 9 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 3 माह तक सुरक्षित रख सकते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु:–

1. फल फसलो का वैज्ञानिक अध्ययन उद्यान विज्ञान की शाखा पॉमोलॉजी (फल विज्ञान) में करते हैं।
2. केले के बीज रहित फल त्रिगुणिता के कारण होते हैं।
3. बेर मे आजकल नई किस्म थाई बेर(एपल बेर), बांग्लादेश से पश्चिम बंगाल के रास्ते भारत आयी है जो आकार मे बढ़ा (हरि सेव) तथा खस्ता बनावट का फल हैं।
4. अमरूद की मुख्य समस्या उखटा रोग है उसे भविष्य में इसी वंश की अन्य जातियों के संकरण सें प्रबंध किया जा सकता है जिनमें सीडियम मोले, सीडियम ग्वाइनेन्स (ब्राजीलियन अमरूद तथा ग्वेनिया अमरूद), सीडियम प्यूमिलम, सीडियम कैटिलियेनम (स्ट्राबेरी या कैटले अमरूद), सीडियम कैटिलियेनम किस्म ल्यूसिडम, सीडियम फ्रीड्रिक्स्थेलियेनम (चीनी अमरूद), सीडियम कुजाविलस व फिजोआ सेलोवियाना (पाइन एपल अमरूद) प्रमुख है।
5. केले का सत्य तना भूमिगत रहता है जिसे राइजोम कहते है।
6. अमरूद में पेक्टिन की प्रचूरता के कारण गुणवता युक्त जैली बनाई जा सकती हैं।
7. नींबू वर्गीय फलों के रस में कड़वाहट उसके लिमोनिन नामक एल्केलाइड के कारण होती है।
8. आम भारत के अलावा पाकिस्तान, फिलिपाइन्स व बांग्लादेश का राष्टीय फल है।
9. पपीता पहला ट्रान्सजेंनिक फल है जिसकी जिनोम क्रम किया गया तथा रिंग स्पोट विषाणु से प्रतिरोधी किस्में सनअप व रेनबो विकसित कि गई है।
10. आँवला में पुष्पन मार्च–अप्रैल के बाद भ्रूण चार माह तक सुसुप्तावस्था में रहने के बाद अगस्त से फल की बढ़वार दिखाई देने लगती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. नर मंजरी हेतु खजूर की उन्नत किस्म बताई है?
   (अ) हलावी (ब) जाहदी
   (स) मेडजूल (द) घनामी
2. गोमायशी, थार नीलकंठ व थार दिव्या नामक किस्में किस फल वृक्ष की है।
   (अ) बेल (ब) बेर
   (स) आंवला (द) खजूर
3. बेल में पुष्पन का समय बताइये।
   (अ) जनवरी–फरवरी (ब) अप्रेल–मई
   (स) अगस्त–सितम्बर (द) दिसम्बर–जनवरी
4. अनार का व्यवसायिक प्रसारण कौनसी विधि से करते हैं?
   (अ) बीज (ब) गूटी
   (स) कलम (द) उत्तक संवर्द्धन
5. आँवले में पुष्पन का समय।
   (अ) जनवरी–फरवरी (ब) मार्च–अप्रैल
   (स) जून–जुलाई (द) अक्टूबर–नवम्बर
6. अंगूर के कौनसे रोग के निदान करने में बोर्डो मिक्सर की खोज हुई?
   (अ) एन्थ्रेक्नोज (ब) फल विगलन
   (स) छाछ्या (द) मृदु रोमिल आसिता
7. बेर का पौधा कब सुषुप्तावस्था में जाता है?
   (अ) शरद काल (ब) ग्रीष्मकाल
   (स) वर्षाकाल (द) उपर्युक्त सभी समय
8. पपीते के पर्ण कुंचन विषाणु जनित रोग का निम्न में से कौनसा प्रमुख कारक है?
   (अ) कवक (ब) माहू (Aphid)
   (स) सफेद मक्खी
   (द) लाल मकड़ी (Red spider mite)
9. अमरूद की लाल गूदे वाली किस्म कौनसी है ?
   (अ) सरदार (ब) ललित
   (स) अर्का अमूल्या (द) पंत प्रभात
10. निम्न में से कौनसी व्याधि केले को सर्वाधिक हानि पहुँचाती है?
    (अ) पनामा विल्ट (ब) शीर्ष गुच्छा
    (स) फिंगर टिप (द) फल विगलन

अतिलघूत्तरात्मक

1. बेल में किस एल्केलाइड़ के कारण औषद्यीय गुण पाये जाते हैं।
2. हीट यूनिट क्या होती है?
3. मृग बहार के फल कब परिपक्व होते हैं?
4. आँवले में उत्तक क्षय रोकथाम में प्रयुक्त रसायन का नाम बताइयें।
5. अंगूर की खेती हेतु भूमि का पी एच मान कितना होना चाहिए?
6. बेर में पौध अन्तराल कितना रखते हैं?
7. कौनसा सूत्रकृमि केले को नुकसान पहुँचाता है?
1. संतरे में पुष्पन व फलन का समय बताइये।
2. संतरे में खाये जाने वाला भाग बताइये ।
10. नींबू के पौध प्रसारण की सरल विधि कौनसी है ?
11. आम की मध्यम फलत वाली किस्में बताइये।

लघूत्तरात्मक

1. खजूर में कृत्रिम परागण पर टिप्पणी लिखो।
2. बेल में फल फटने की समस्या का समाधान।
3. बहार नियंत्रण में हस्त बहार लेने हेतु कौनसी कृषि क्रियाएँ कब करें?
4. आँवले में कीट प्रबंधन।
5. अंगूर की अगेती किस्मों का नाम लिखो।
6. बेर में संघाई व काट–छाँट पर टिप्पणी लिखो।
7. पपीते की नर्सरी की तैयारी व प्रबंधन।
8. अमरूद में उखटा रोग कारण व निवारण।
9. केले की रोपण के बाद के क्रियाकलाप व पौध संरक्षण पर विस्तृत वर्णन करो।
3. नींबू में बहार नियंत्रण पर टिप्पणी लिखो।
4. आम की उत्तरी भारत की प्रमुख संकर किस्मों का विवरण दीजिये।

निबन्धात्मक

1. खजूर की उन्नत किस्में, पौध संरक्षण व तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन पर सविस्तार से लिखो।
2. आँवले की खेती का विस्तृत वर्णन करो।
3. अंगूर में पौध संरक्षण व दैहिक विकारों का वर्णन करो।
4. पपीते में लिंग समस्या व समाधान तथा पपेन निकालने की विधि का वर्णन करो।
5. अमरूद की खेती का वर्णन निम्न बिन्दुओं पर सविस्तार से करो–
   (अ) उन्नत किस्में (ब) प्रवर्द्धन (पौध प्रसारण)
   (स) खाद व उर्वरक (द) बहार प्रबंधन
   (य) उपज व भण्डारण
6. आम के प्रमुख कायिकीय विकारों का वर्णन करें।

उत्तरमाला

1. (द) 2. (अ) 3. (ब) 4. (ब) 5. (ब)
6. (द) 7. (ब) 8. (स) 9. (ब) 10. (अ)

अध्याय–11

फल परिरक्षण (Fruit Preservation)

11.1 परिरक्षण की वर्तमान स्थिति, महत्व एवं भविष्य (Present status, importance and scope of fruit preservation) – भारत में जलवायु तथा मृदा की विभिन्नता के कारण विभिन्न प्रकार के फल तथा सब्जियों का उत्पादन होता है। वर्तमान में भारत का फल तथा सब्जी उत्पादन में विश्व में चीन के बाद द्वितीय स्थान है। स्वतन्त्रता पश्चात् भारत में फल तथा सब्जी के उत्पादन में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। सत्र 2013–14 में 88.97 मिलीयन टन फल एवं 162.89 मिलीयन टन सब्जी का उत्पादन हमारे देश में हुआ। कृषि की अन्य फसलों की तुलना में उद्यानिकी फसलें तुड़ाई पश्चात् जल्दी खराब होने लगती है यानि कि उद्यानिकी फसलों की भण्डारण क्षमता बहुत कम होती है। यही कारण कि लगभग 25–30 प्रतिशत फल व सब्जियाँ तुड़ाई पश्चात् बिना उपयोग किये ही खराब हो जाती है। यह सर्वविदित है कि खाद्य–पदार्थ के उत्पादन की अपेक्षा उतनी ही मात्रा में सुरक्षित कर लेना अधिक सस्ता है। बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए भविष्य में खाद्य पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ तुड़ाई के उपरान्त उनका प्रबंधन तथा उचित विधियों से परिरक्षण नितांत आवश्यक है।

परिरक्षण की वर्तमान स्थिति (Present status of preservation)

भारत में फल परिरक्षण अत्यन्त ही प्राचीन काल से प्रचलित है। फलों तथा सब्जियों को सुखाना, अचार बनाना, पेय पदार्थ तैयार करना प्राचीन काल से चली आ रही फल परिरक्षण की विधियाँ हैं। फिर भी हमारे देश में फल व सब्जी के कुल उत्पादन का मात्र 2 प्रतिशत भाग ही परिरक्षण में काम लिया जाता है, जबकि विकसित देशों में 70 से 80 प्रतिशत फल व सब्जियों का परिरक्षण किया जाता है।

भारत में प्रथम परिरक्षण उद्योगशाला सन् 1920 में बम्बई में स्थापित की गई। इसके पश्चात् 1939 तक देश में कुछ उद्योगशालाएँ स्थापित हुई जो विभिन्न प्रकार के कैण्डी पदार्थ, फलपाक, अवलेह, मामलेड तथा पेय पदार्थ बनाती थी। इस समय भारत में फल परिरक्षण व्यवसाय धीमी गति से बढ़ रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसकी प्रगति में थोड़ी तेजी आई। सन् 1947 में भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् इस उद्योग के स्थायी बुनियाद रखी गई व विदेशों के आयात पर पाबंदी लगा दी गई तथा सरकार ने परिरक्षण उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिये अनेक रियायतें दी। सन् 1955 में आवश्यक वस्तु अधिनियम क्रमांक 3 के अन्तर्गत फल उत्पाद आदेश, 1955 (एफ.पी.ओ., 1955) स्वीकृत किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत में निर्मित परिरक्षित पदार्थों की गुणवत्ता पर नियन्त्रण रखना तथा उच्च गुणवत्ता वाले पदार्थ तैयार करना था। उक्त एफ.पी.ओ. को समय–समय पर संबोधित किया गया। 1 अप्रैल 2009 को भारत में क्षेत्रवार कुल फल–सब्जी परिरक्षण की 6471 इकाइयों को स्वीकृत अनुज्ञापत्र जारी किये गये।

फल परिरक्षण का महत्त्व (Importance of fruit preservation)

फल व सब्जी उत्पादकों को उनके उत्पादन का उचित मूल्य दिलाने के लिए, उपभोक्ताओं को वर्ष भर फल तथा सब्जियाँ उचित दर पर उपलब्ध कराने के साथ–साथ तुड़ाई उपरान्त होने वाले नुकसान को कम करने में फल–सब्जी परिरक्षण उद्योग का बहुत महत्त्व है। इसके अतिरिक्त संतुलित आहार–पोषण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये, दुर्गम स्थानों में सैनिकों की खाद्य–पूर्ति के लिए तथा एक राष्ट्रीय उद्योग के रूप में विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिये फल–सब्जी परिरक्षण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। फल परिरक्षण का विकास एवं विस्तार वृहत्–परिमाण उद्योग, लघु परिमाण उद्योग तथा कुटीर उद्योग के रूप में किया जा सकता हे, जो कुछ सीमा तक रोजगार की समस्या को कम करने में सहायक होता है।

1. आर्थिक महत्व (Economic importance)

फल व सब्जियों के फलने का समय प्रकृति द्वारा प्रायः निश्चित है अतः एक ही समय में पूर्ण पैदावार तथा भण्डारण क्षमता बहुत कम होने के कारण बाजार में उनकी अधिकता हो जाती है तथा उनका मूल्य बहुत कम हो जाता है, जिससे उत्पादकों को उनके परिश्रम का उचित मूल्य नहीं मिल पाता तथा उत्पादकों को अधिक हानि उठानी पड़ती है। ताजे फल तथा सब्जियों की उपज को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का खर्च भी अधिक आता है। इससे उपभोक्ताओं को फल व सब्जियाँ अधिक मूल्य में मिलती है। अतः ऐसे स्थानों पर जहाँ फल व सब्जियों की पैदावार अधिकता से होती है, फल परिरक्षण उद्योग स्थापित कर उत्पादकों को उचित मूल्य दिया जा सकता है। साथ ही उपभोक्ताओं को पूरे वर्ष उचित मूल्य पर फल व सब्जियाँ उपलबध कराई जा सकती है।

2. औद्योगिक महत्व (Industrial importance)

फल परिरक्षण उद्योग का अन्य उद्योगों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान हैं इस व्यवसाय में काम आने वाले कच्चे माल जैसे फल–सब्जियाँ, टिन के डिब्बे, काँच व प्लास्टिक की बोतलें, शक्कर, अम्ल, रंग आदि की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त परिरक्षण उद्योगशाला में काम आने वाले कई उपकरणों तथा मशीनों की भी आवश्यकता रहती है। अतः इस व्यवसाय के विकास के साथ–साथ अन्य व्यवसायों को भी बढ़ावा मिलता है।

3. परिरक्षित पदार्थों का निर्यात (Export of preserved products)

फल व सब्जी से परिरक्षित पदार्थों का विदेशों में निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। जिससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है। भारत में परिरक्षित पदार्थों

सारणी 11.1

भारत से निर्यात किए जाने वाले परिरक्षित पदार्थों की मात्रा व मूल्य

वर्ष क्र.सं.	पदार्थ	2013–14		2014–15		2015–16	
		मात्रा मी.टन	मूल्य (करोड़ रु.)	मात्रा मी.टन	मूल्य (करोड़ रु.)	मात्रा मी.टन	मूल्य (करोड़ रु.)
1.	खीरा एवं घर्किन्स (तैयार एवं संरक्षित)	218749.78	955.20	251182.96	1202.92	202926.91	999.17
2.	शुष्कित एवं संरक्षित सब्जियाँ	56158.40	742.72	63701.78	847.14	66189.61	914.20
3.	आम गूदा	174860.33	772.95	154820.69	841.38	128866.01	796.17
4.	अन्य संसाधित फल एवं सब्जियाँ	287384.63	2266.60	31659.43	2569.91	320732.59	2900.33
	कुल	7571153.11	4737.45	785764.86	5461.35	718715.13	5609.87

स्रोत : डी.जी.सी.आई.एस. (2015–16 – वार्षिक निर्यात)

के निर्यात में दिन–प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है। 2013–14 से 2015–16 में भारत के विभिन्न फल–सब्जी परिरक्षित पदार्थों के हुए निर्यात का विवरण सारणी 11.1 में प्रस्तुत है।

4. रोजगार उपलब्धता (Availability of employment)

फल परिरक्षण उद्योगों के विकास के साथ रोजगार उत्पन्न होने क प्रबल सम्भावना होती है। इस उद्योग के साथ–साथ सहायक उद्योगों जैसे शक्कर, रसायन उद्योग, यांत्रिकीय पेपर उद्योग, यातायात उद्योग के विकास के लिये कृषि वैज्ञानिक, फूड टेक्नालॉजिस्ट, अभियंता आदि की आवश्यकता होगी। आधुनिक परिवारों में आर्थिक संकट को दूर करने के लिये महिलाओं की प्रवृत्ति नौकरी करके अधिक आय करने की होती जा रही है। ऐसी दशा में परिरक्षित पदार्थ जो अतिरिक्त समय में बनाये जा सकते हैं, अतिरिक्त आय का साधन हो सकते हैं।

5. संतुलित आहार (Balanced diet)

भारत में कुछ फल ऐसे भी पैदा होते हैं जो जंगली कहे जाते हैं तथा उनको उसी रूप में उपयोग नहीं कर सकते जिस रूप में उत्पन्न होते हैं। परन्तु ये फल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं जैसे बेल, सीताफल, कैंथ, जामुन, पीलू, ढाँसरिया, केर, टिमरू, आँवला आदि। इन फलों से परिरक्षित पदार्थ तेयार किये जा सकते हैं, जैसे बेल का शर्बत, आँवले का मुरब्बा व केन्डी, जामुन का सिरका आदि।

फल परिरक्षण के उपरोक्त महत्त्व के अतिरिक्त, वर्ष पर्यन्त फल–सब्जी की उपलब्धता, दुर्गम स्थलों पर जहाँ फल व सब्जी का उत्पादन नहीं हो सकता आदि परिस्थितियों में भी फल–सब्जी परिरक्षण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।,

फल परिरक्षण का भविष्य (Future of fruit preservation)

फल परिरक्षण व्यवसाय की भारत में दूसरे विकसित देशों की अपेक्षा वर्तमान स्थिति तथा इसके महत्व का अध्ययन करने के उपरान्त यह एकदम स्पष्ट है कि इस व्यवसाय का भारत जैसे विकासशील देश में उज्जवल भविष्य है। परन्तु वर्तमान उत्पादन को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह व्यवसाय अनेक समस्याओं से ग्रस्त है जो इसके विकास में बाधक है। विभिन्न समस्याओं में निम्नलिखित समस्या प्रमुख है–

1. वांछित किस्म की उचित समय पर फल तथा सब्जियाँ उपलब्ध नहीं होना।
2. सहायक पदार्थों जैसे शक्कर, नमक, परिरक्षक पदार्थ आदि के गुणों में विभिन्नता।
3. पैकेजिंग सामग्री का अनुपलब्धता व महंगा होना।
4. तकनीकी मार्गदर्शन का अभाव।
5. ग्रामीण क्षेत्रों की अवहेलना।
6. लघु इकाइयों द्वारा विक्रय में कठिनाई आना।
7. औसत व्यक्ति की मानसिकता व संसाधित पदार्थों का महंगा होना आदि।

फल परिरक्षण व्यवसाय को उपर्युक्त समस्याओं से उभारने के लिए निम्न उपाय करने की आवश्यकता

1. सस्ते पदार्थों का निर्माण करना।
2. उचित दर पर उचित किस्म की फल व सब्जी की उपलब्धता होना।

11.2 फल परिरक्षण के सिद्धान्त एवं विधियाँ (Principles and methods of fruit preservation)

फल एवं सब्जियाँ जीवधारी उत्पाद है जिनमें तुड़ाई पश्चात् भी वे सभी क्रियाएँ होती रहती है,जो तुड़ाई से पूर्व होती है जैसे श्वसन एवं वाष्पोत्सर्जन आदि। इसी क्रम में तुड़ाई पश्चात् भी उनमें भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन जब अवांछनीय सीमा तक हो जाते हैं तो ये उपयोग योग्य नहीं रहते हैं। इस अवस्था से पूर्व ही उनसे कुछ खाद्य पदार्थ तैयार कर उनको खराब होने से बचाया जा सकता है। अतः फल–परिरक्षण, वह विज्ञान है जो प्राकृतिक विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों को अपना कर फलों तथा सब्जियों के संसाधन एवं नष्ट न होने देने की वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान कराता है। इसे फल प्रोद्योगिकी भी कहा जाता है। जिसमें फल–सब्जियों का संरक्षण और संसाधन किया जाता है। फल एवं सब्जियों के खराब होने के निम्न कारण प्रमुख है–

1. शुष्कन या सुखाना (Desiccation or drying)

यह वातावरण के उच्च तापक्रम के कारण होता है। जिसमें फल एवं सब्जियों में उपस्थित नमी उच्च ताप के कारण वाष्पोत्सर्जन क्रिया से कम होती जाती है, ताजा फल सब्जियों में झुर्रियां पड़ना प्रारम्भ हो जाती हैं एवं सिकुड़ने लगते हैं और वे उपभोग के लिये उपयुक्त नहीं रहते हैं। ऐसी अवस्था में तुड़ाई पश्चात् फल व सब्जियों का भण्डारण निम्न ताप पर करना चाहिए।

2. एन्जाइम की क्रियाशीलता एवं रासायनिक अभिक्रिया

फल तथा सब्जियों में विभिन्न प्रकार के एन्जाइम पाये जाते हैं। ये एन्जाइम पौधों की विभिन्न क्रिया जैसे वृद्धि, उपापचय, पुनरूत्पादन आदि के लिये आवश्यक है। एन्जाइम पूर्ण परिपक्व फल एवं सब्जियों को पकाने वाली अभिक्रिया में भी सहायक होते हैं। एन्जाइम की उत्प्रेरक शक्ति रासायनिक अभिक्रियाओं को बढ़ाती है। कटे हुए फल व सब्जियों को हवा में खुला रखने पर थोड़े समय में काले पड़ना भी एन्जाइम की क्रियाशीलता व रासायनिक अभिक्रिया का ही परिणाम है।

3. सूक्ष्म जीव (Microorganism)

विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों में फफूंदी, खमीर व जीवाणु की फल व सब्जियों एवं उनके उत्पाद को खराब करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये सूक्ष्म जीव उचित वातावरण में अपने भरण पोषण के लिए फल व सब्जियों को अपना माध्यम बनाते हैं जिसके फलस्वरूप फल एवं सब्जियों में किण्वन होता है तथा इस प्रकार किण्वित खाद्य पदार्थ उपयोग करके कुछ खाद्य पदार्थ को उपयोगी भी बना सकते है जैसे सिरका, मदिरा, आचार आदि में इनकी सहायता अनिवार्य है। फल व सब्जी को सड़ाने वाले विभिन्न सूक्ष्म जीवों में जीवाणु केनिंग या बोटलिंग में विशेष समस्या उत्पन्न करते हैं। ये जीवाणु जीव विष उत्पन्न करते हैं इन जीवाणु के बीजाणु उच्च ताप के प्रति सहिष्णु होते हैं अतः इन्हें खमीर या फफूंद की तरह मात्र उच्च ताप के उपचार से खत्म नहीं किया जा सकता है।

फल परिरक्षण के सिद्धान्त एवं विधियाँ

फल परिरक्षण के सिद्धान्त एवं विधियों को निम्न दो भागों में विभाजित किया गया है।

1. **अस्थायी परिरक्षण** (Temporary preservation)
2. **स्थायी परिरक्षण** (Permanent preservation)

1. अस्थायी परिरक्षण : परिरक्षण की ऐसी विधियाँ जिनके द्वारा फल व सब्जियों को कुछ दिनों से कुछ महीनों तकम परिरक्षित किया जा सकता है। अस्थायी परिरक्षण की कुछ प्रचलित विधियाँ निम्न है–

*** स्वच्छता :** तुड़ाई उपरान्त भण्डारण करने से पहले कटे–फटे, रोग व कीटाणु से प्रभावित फलों व सब्जियों को छाँट कर अलग कर उन्हें साफ पानी से धो लेना चाहिए जिससे इनकी सतह पर लगी धूल मिट्टी साफ हो जाती है तथा सूक्ष्म जीवों की संख्या कम हो जाती है व फल तथा सब्जियों को खराब होने से बचाती है।

*** निम्न तापक्रम द्वारा :** ताजे फलों व सब्जियों को निम्न तापक्रम पर बिना किसी परिवर्तन के कुछ समय तक भण्डारित किया जा सकता है। निम्न तापक्रम पर सूक्ष्म जीवों की वृद्धि तथा एन्जाइम की क्रिया कम हो जाती है तथा फल व सब्जियों में होने वाली रासायनिक अभिक्रिया भी रूक जाती है। फलस्वरूप इनको कुछ समय तक खराब होने से बचाया जा सकता है।

*** उच्च तापक्रम द्वारा :** सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता एवं वृद्धि को उच्च तापक्रम द्वारा नष्ट किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उच्च तापक्रम (160-180° F) से एन्जाइम निष्क्रिय हो जाते हैं, तथा फलों, सब्जियों व उनके उत्पादों में होने वाली रासायनिक अभिक्रिया भी कम हो जाती है। जैसे– पास्तुरीकरण, ब्लाचिंग आदि।

*** वायु निष्कासन द्वारा :** ऑक्सीजन वायु जीव की वृद्धि तथा क्रियाशीलता के लिये आवश्यक होती है। अतः फलों, सब्जियों से बने उत्पादों के डिब्बों में से वायु को बाहर निकाल देने पर इनको कुछ दिनों तक सुरक्षित रखे जा सकता है। क्योंकि वायु की अनुपस्थिति में वायु जीव क्रियाशील नहीं रह पाते तथा कोई रासायनिक क्रिया भी नहीं हो पाती है। कैनिंग में निर्वात पैकिंग की विधि इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

*** नमी निष्कासन द्वारा :** उचित नमी सूक्ष्म जीवों की वृद्धि एवं क्रियाशीलता के लिये आवश्यक होती है। एन्जाइम की क्रियाशीलता व रासायनिक अभिक्रिया भी उचित नमी की अवस्था में अधिक होती है। फल व सब्जियों में 80–90 प्रतिशत तक नमी होती है इसीलिये ये शीघ्र ही खराब होने लगते हैं। अतः फल व सब्जियों की नमी को कम करके व उनमें कुल ठोस पदार्थों की मात्रा बढ़ाकर अस्थाई रूप से परिरक्षित किया जा सकता है जैसे फल व सब्जियों को सुखाना, फल रस को गाढ़ा करके परिरक्षित करना आदि।

*** मृदु प्रतिरोधी पदार्थों का उपयोग :** नमक (6-8%), चीनी (42-50%), सिरका (0.5-1.5%) एवं मसाले की थोड़ी मात्रा के साथ फल एवं सब्जियों का अस्थायी परिरक्षण किया जा सकता है। जैसे अचार में नमक तथा टमाटर सॉस में सिरका परिरक्षित पदार्थ का कार्य करता है।

2. स्थाई परिरक्षण : परिरक्षण की ऐसी विधियाँ जिनके द्वारा फल व सब्जियों को कुछ वर्षों तक परिरक्षित किया जाता है। स्थाई परिरक्षण के लिये निम्नलिखित विधियाँ प्रचलित है–

*** जीवाणुविहीनीकरण क्रिया :** इस विधि के अन्तर्गत फल व सब्जियों को जीवाणु रहित डिब्बों में भरकर, वायु रहित करके 100^{o} सेल्सियस तापक्रम पर 30–60 मिनट (कम अम्लता वाले पदार्थों में) तक गर्म करके जीवाणु रहित करते हैं।

*** सुखाना या निर्जलीकरण करना :** फल व सब्जियों के परिरक्षण की यह विधि प्राचीन तथा अत्यधिक प्रचलित है। इस विधि के अन्तर्गत फल व सब्जियों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर धूप में या निर्जलीकरण मशीन (सूखावक) द्वारा धीरे–धीरे नमी रहित करते हैं। सिद्धान्ततः जब कुल ठोस पदार्थ की मात्रा 70 प्रतिशत से अधिक हो तो फल व सब्जियों में सूक्ष्मजीव सक्रिय नहीं रहते हैं। सूखे हुए पदार्थों को पॉलीथीन की थैलियों या डिब्बों में भर कर परिरक्षित कर लिया जाता है।

*** किण्वीकरण द्वारा :** किण्वन वह रासायनिक क्रिया है जिसमें शर्करायुक्त पदार्थों का एन्जाइम युक्त सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन होता है। इस क्रिया में ऐसे पदार्थों का निर्माण होता है जो अवांछित सूक्ष्म जीवों एवं एंजाइम की गतिविधियों को रोक देते हैं।

एल्कोहॉलिक किण्वन : इस किण्वन में हैक्सोज शर्करा का अपघटन खमीर द्वारा होता है और एल्कोहॉल और कार्बन–डाई–ऑक्साइड बनते हैं। इस विधि में एल्कोहॉल प्रमुख परिरक्षक तत्व होता है। उदाहरण– विभिन्न प्रकार की मदिरा।

$$C_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{खमीर}} 2C_2H_5OH+2CO_2$$

एसिटिक अम्ल किण्वन : इस किण्वन में एल्कोहॉल का विघटन एसिटिक अम्ल जीवाणु द्वारा होता है तथा एसिटिक अम्ल का निर्माण होता है। इस विधि में एसिटिक अम्ल प्रमुख परिरक्षक तत्व है। उदाहरण– सिरका।

$$C_2H_5OH+O_2 \xrightarrow{\text{एसिटिक अम्ल जीवाणु}} CH_3COOH+H_2O$$

लैक्टिक अम्ल किण्वन : इस किण्वन के अन्तर्गत डैक्ट्रोस शर्करा का जीवाणुओं द्वारा अपघटन होता है। इसमें लैक्टिक अम्ल प्रमुख तत्व है जो परिरक्षण का कार्य करते हैं। उदाहरण– अचार।

*** परिरक्षक पदार्थों के उपयोग द्वारा :** साधारणतः खाद्य पदार्थों के परिरक्षण के लिये उचित मात्रा में नमक, शक्कर, सिरका, मसाला, तेल व रासायनिक परिरक्षक का उपयोग करके उनका स्थाई परिरक्षण किया जाता है। जैसे–

नमक का उपयोग – पदार्थ में 15 से 20 प्रतिशत नमक की उपस्थिति खराब होने से रोकती है। परासरण दबाव के कारण सूक्ष्म जीव वृद्धि नहीं कर पाते हैं जैसे– अचार, चटनी आदि।

शर्करा द्वारा : खाद्य पदार्थों में 65–70 प्रतिशत शर्करा की उपस्थिति परासरण दबाव के कारण सूक्ष्म जीवों को निष्क्रिय कर देती है और पदार्थ खराब नहीं होते हैं जैसे मुरब्बा, जैली, जैम, मार्मलेड आदि।

सिरका द्वारा : सिरका में उपस्थित एसिटिक अम्ल सूक्ष्म जीवों के लिये विष का काम करता है अतः किसी भी खाद्य पदार्थ में 2 प्रतिशत एसिटिक अम्ल सूक्ष्म जीवों को मार कर परिरक्षण का कार्य करता है जैसे– अचार।

तेल द्वारा : विभिन्न खाद्य तेल सूक्ष्म जीवों के प्रतिरोधी होते हैं कभी–कभी तेल फफूँद निरोधक भी होते हैं। खाद्य पदार्थों में तेल डालने से उनमें उपस्थित सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं और उनका पुनः प्रवेश भी रूक जाता है जैसे अचार।

रासायनिक परिरक्षक द्वारा : मुख्य रूप से पोटेशियम–मेटा–बाई सल्फाइट व सोडियम बेन्जोएट नामक रसायन का उपयोग परिरक्षक पदार्थ के रूप में किया जाता है। ये रसायन खाद्य पदार्थ में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता व वृद्धि को रोक कर खराब होने से बचाते हैं। जैसे स्क्वैश, कोर्डियल, सॉस आदि।

कार्बन–डाई–ऑक्साइड द्वारा : विभिन्न फलों और पेय पदार्थों के परिरक्षण के लिए कार्बन–डाई–ऑक्साइड गैस का रसायन के रूप में उपयोग किया जाता है, जिन्हें कार्बनीकृत पेय के रूप में जाना जाता है।

*** विकिरण (रेडियेशन द्वारा परिरक्षण) :** खाद्य पदार्थों में न्यूनतम अणु विकिरणोपचार करने से सूक्ष्म जीवों को नष्ट किया जा सकता है तथा एन्जाइम भी निष्क्रिय हो जाते हैं। खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में साधारणतः गामा विकिरण (γ रेडियेशन) का उपयोग किया जाता है। इसे ठण्डी जीवाणुविहीनीकरण क्रिया भी कहते हैं।

11.3 फल एवं सब्जियों की डिब्बाबंदी

(Canning of fruits & vegetables)

1. फल व सब्जियों का चुनाव (Selection of fruits and vegetables) : डिब्बाबन्दी के लिए फल व सब्जियाँ स्वस्थ, ताजा मुलायम हो तथा दाग धब्बे रहित तथा क्षतिग्रस्त नहीं होनी चाहिए। फल अधिक पके नहीं हो अन्यथा डिब्बाबन्दी के समय सिकुड़ जाते हैं। फल सब्जियों की सभी किस्में डिब्बाबन्दी के लिए उपयुक्त नहीं होती। जैसे– आम की दशहरी, गाजर पीली तथा शलजम सफेद इस कार्य के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

2. सफाई (Cleaning) : डिब्बाबन्दी में प्रयुक्त फल व सब्जियों को स्वच्छ पानी से अच्छी प्रकार साफ करना चाहिए ताकि इससे उन पर लगी धूल तथा रासायनिक पदार्थ आदि साफ हो जावे। प्रारम्भ में साधारण पानी और उसके बाद गर्म पानी से धोना अच्छा होता है।

3. फल एवं सब्जी की तैयारी (Preparation of fruits and vegetables) : फल व सब्जियों की सफाई के बाद फलों व सब्जियों के अनुसार उनको छील कर (पीलिंग) छोटे टुकड़ों में व्यवस्थित किया जाता है। फलों को काटने के बाद तुरन्त 2 प्रतिशत नमक के घोल में डालना चाहिए जिससे उनका रंग खराब नहीं होता है।

4. श्वेतन (Blanching) : तैयार फल व सब्जियों को उनकी प्रकृति के अनुसार 2 से 5 मिनट तक उबलते हुए पानी में रखना तथा उन्हें ठण्डा करने की क्रिया को विवर्ण क्रिया (ब्लांचिग) कहा जाता है। विवर्ण की क्रिया के कई लाभ है, जैसे– उनके रंग व स्वाद में सुधार हो जाता है उन पर चिपकी गन्दगी, रोगाणु दूर हो जाते हैं व खटास कड़वाहट कम हो जाती है आदि। छोटे स्तर पर विवर्णीकरण के लिए उन्हें जालीदार टोकरियों में रखकर कुछ समय (2 से 5 मिनट) के लिए उबलते हुए पानी में रखा जाता है। बड़े स्तर पर इस कार्य को मशीनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। विवर्णीकरण से कभी कभी फलों का रंग, सुगन्ध तथा मिठास कम हो जाती है तथा जल में घुलनशील पोषक तत्व भी कम हो जाते हैं। गर्म पानी से निकाल कर फल सब्जियों को ठण्डे पानी में डुबोया जाता हैं

5. डिब्बो में भरना (Filling in cans) : विवर्ण क्रिया के पश्चात फल व सब्जियों के टुकड़ों को पहले से साफ एवं गर्म पानी से धुले डिब्बों में या काँच की बोतलों में भरा जाता है। तैयार फल व सब्जियों को डिब्बों में हाथ से या फिर स्वचालित मशीनों द्वारा भरा जाता है। पदार्थ को डिब्बों में न अधिक दबाकर और न ही अधिक ढीले भरना चाहिए। भरने के पश्चात् ऊपर ½ से ¾ इंच स्थान खाली रखना चाहिए। फलों के डिब्बों में फल का रस या पानी, चीनी की चाशनी जिसे सीरप भी कहा जाता है, उपयोग किया जाता है।

खट्टे या कम मीठे में अधिक सान्द्रता का घोल तथा मीठे फलों में कम सान्द्रता का घोल भरा जाता है। सामान्यतः शक्कर के घोल की सान्द्रता 20–55° ब्रिक्स तक रखी जाती है।

डिब्बाबन्दी के लिए चीनी की चाशनी प्रायः तीन प्रकार की– गाढ़ी चाशनी (50% चीनी) मध्यम या साधारण चाशनी (40% चीनी) तथा हल्की चाशनी (33% चीनी) का उपयोग किया जाता है। सब्जियों की डिब्बाबन्दी के लिए सीरप के स्थान पर नमक का घोल (ब्राइन) प्रयोग में लिया जाता है। प्रायः 2 प्रतिशत नमक का घोल सभी सब्जियों के लिए उपयुक्त माना गया है।

6. निर्वात या वायु निष्कासन (Exhausting) : पदार्थ एवं घोल से भरे डिब्बे से हवा का निकालना, वायु निष्कासन कहलाता है। इससे डिब्बों में वायु शून्य स्थान या निर्वात पैदा हो जाता है, जो खाद्य पदार्थ को सुरक्षित रखने में सहायक होता है। यह कार्य डिब्बों को गर्म करके या मशीनों द्वारा किया जाता है।

7. डिब्बा बन्द करना (Sealing) : डिब्बों की वायु निकलने के पश्चात गर्म डिब्बों को पानी से बाहर निकाल करके सील कर दिया जाता हैं डिब्बाबन्द या सील करने का कार्य आजकल विशेष मशीनें जिसे डबल सीमर कहते हैं, प्रयोग में लायी जाती है। यह मशीनें विभिन्न आकार व क्षमता वाली होती है। बन्द करते समय डिब्बे का तापमान 70° सेल्सियस से कम नहीं होने पावे।

8. संसाधन (Processing) : बन्द डिब्बों को एक निश्चित तापमान पर एक निश्चित समय तक इस उद्देश्य से गर्म किया जाता है कि पदार्थ में उपस्थित सूक्ष्मजीव नष्ट हो जावें तथा शेष अक्रियाशील हो जावें। यहाँ यह ध्यान रखा जाता है कि पदार्थ का मौलिक गुण बना रहे। इस कार्य के लिए अधिकांश फल के लिए 100° सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। सब्जियों से भरे डिब्बे को 115–120° सेल्सियस तापक्रम पर संसाधित किया जाता है। सब्जियों में अम्ल कम होने के कारण अधिक समय तक गर्म किया जाता है। इस क्रिया के बाद डिब्बे को लगभग 39° सेल्सियस तापमान तक ठण्डा किया जाता है। ठण्डा करने के लिए डिब्बे को ठण्डे पानी से भरे पात्र में डुबोते हैं या फिर इसके ऊपर पानी का फव्वारा डाला जाता है। डिब्बे को ठण्डा नहीं करने से खाद्य पदार्थ में जलने से विकार पैदा हो कर गुणवत्ता नष्ट होने लगती है।

डिब्बे के ऊपर लेबल मशीन द्वारा निर्माता एवं सामग्री का नाम, तैयार करने की दिनांक व अन्य संबंधित जानकारी का लेबल लगाया जाता है। तैयार डिब्बों को ठण्डे व सूखे हवादार कमरों में भण्डारित कर लिया जाता है।

11.4 फलपाक (Jam)

जैम फलों के गूदे को चीनी के साथ एक निश्चित अनुपात में मिलाकर पकाकर तैयार किया जाने वाला पदार्थ है। जैम में कम से कम 68 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी. एस.एस.) अम्लता 0.5–0.6 प्रतिशत तथा 45 प्रतिशत तक फल का भाग होना आवश्यक होता है। जेम सेब, पपीता, स्ट्राबेरी, बेर, आंवला, करौंदा, अंगूर, खुबानी, आलूबुखारा, आड़ू, गाजर आदि तथा मिश्रित फलों का भी बनाया जा सकता है। जैम के फलों का गूदा, चीनी, पैक्टिन, खटास तथा पानी आवश्यक अंश है। जैम फलों से निर्मित एक स्वादिष्ट उत्पाद है जिसकी घरों में लोकप्रियता बढ़ने के साथ साथ आजकल माँग में काफी वृद्धि हो रही है।

फल पाक बनाने की विधि

*** फलों का चयन :** जैम बनाने के लिए उचित प्रकार से पके हुए फलों का ही चयन करना चाहिए। फल स्वच्छ व उचित अनुपात में गूदेदार होने चाहिए।

*** फलों की तैयारी :** फल विशेष की प्रकृति के अनुसार जैम के लिए चयनित फलों को धोना, छीलना, काटना, उनसे गुठली या बीज निकालना तथा उबालना आदि क्रियाऐं की जाती है। तैयार फलों को छोटे–छोटे टुकड़े कर, स्टील के भगोने में डालकर पानी के साथ उबाला जाता है। पानी की मात्रा फल डूबने तक ही डालनी चाहिए। उबालते समय फलों को कुचलते रहने से उनसे पेक्टिन की पूरी मात्रा निकल आती है तथा गूदा भी लुगदी जैसा हो जाता है। आवश्यक होने पर इसको छाना भी जा सकता है।

*** चीनी मिला कर पकाना :** फलों से गूदा तैयार कर उसमें फल की किस्म तथा खटास के अनुसार चीनी मिलायी जाती है। प्रायः मीठे फलों में कम शक्कर की आवश्यकता रहती है। खट्टे फलों जैसे– करौंदा, रसभरी, खट्टा आम आदि में एक किलो गूदे में 1.250 किग्रा. चीनी तथा मीठे फलों में 0.750 किग्रा. से एक किलो तक चीनी पर्याप्त रहती है। फल के गूदे तथा चीनी के मिश्रण को हल्की आँच पर पकाना चाहिए। पकाते समय मिश्रण को हिलाते रहने से जलने की सम्भावना नहीं रहती है। पकाते समय मिश्रण में 1.5 ग्राम प्रति किलो की दर से नींबू का सत भी मिलाना चाहिए। मिश्रण को इतनी देर तक पकाते हैं कि उसमें घुलित ठोसों की मात्रा 68 प्रतिशत तक तथा उसका तापमान 105° सेल्सियस हो जावे। अधिक तापमान पर जैम सख्त तथा कम पकाने से ढीला रह जाता है।

*** अन्तिम बिन्दु की जाँच :** जैम तेयार हो गया है, इसके लिए निम्न परीक्षण कर पकने की अवस्था का ज्ञान किया जाता है–

I. जैम, मिलायी गयी शक्कर या चीनी का लगभग 1.5 गुना भार का हो जाता है।

ii. उबलते हुए जैम की एक बून्द पानी से भरे पात्र में डालने पर वह बिना फैले पैंदे में बैठ जाती है।

iii. रेफ्रेक्टोमीटर द्वारा जाँच करने पर तैयार जैम में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) 68 प्रतिशत होता है।

*** पात्र में भरना :** गर्म जैम को पहले से निर्जमीकृत पात्रों में भर कर ढक्कन लगा दिया जाता है। जैम भरते समय इस बात का ध्यान रखें कि बोतलों में हवा न रह जावे अन्यथा जैम बाद में खराब हो जाता है।

विभिन्न फलों से फलपाक बनाने की आवश्यक सामग्री

फल का नाम	प्रति किलो गूदे में पदार्थ की मात्रा		
	पानी (मि.ली.)	चीनी (कि.ग्रा.)	अम्ल (ग्राम)
सेव	100	0.750	2.0
पपीता	100	0.750	3.0

अवलेह (Jelly)

अवलेह (जैली) एक अर्ध ठोस पदार्थ है जो पेक्टिनयुक्त फलों के रस में उचित मात्रा में चीनी के साथ पकाकर तैयार किया जाता है। जैली में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस. एस.) 65 प्रतिशत तथा फलों का रस या अंश 45 प्रतिशत होता है। जिन फलों में पैक्टिन की मात्रा अधिक होती हे, उन्हीं फलों को जैली बनाने के लिए उपयुक्त समझा जाता है। जैली प्रायः अमरूद, आम, करौदां, अंगूर, जामुन, खट्टे सेब, नारंगी तथा आलू बुखारा आदि से बनायी जा सकती है। इसका उपयोग प्रायः टोस्ट या डबलरोटी के साथ किया जाता है।

*** आदर्श जैली की पहचान :** एक अच्छी जैली में निम्न गुणों का होना आवश्यक है–

(1) जैली चमकरदार, आकर्षक व पारदर्शक होती है एवं ठण्डी होने पर जिस पात्र में रखी जावे वैसा ही आकार ग्रहण कर लेती है।

(2) चाकू से काटने पर चमकदार टुकड़ों में विभक्त हो जाती है।

(3) फलों का वास्तविक सुगन्ध व स्वाद होना चाहिए।

(4) हिलाने पर धीरे धीरे हिलती है (क्वरलिंग) परन्तु तिरछा करने पर बहने नहीं लगे।

*** जैली के मुख्य अंशः :** जैली बनाने के लिए मुख्य रूप से निम्न चार अंशों की आवश्यकता रहती है–

पैक्टिन	–	1.0 प्रतिशत
चीनी	–	60–65 प्रतिशत
अम्ल	–	0.75–0.90 प्रतिशत
पानी	–	33–38 प्रतिशत

जैली बनाने की विधि

*** फलों का चयन :** जैली के लिए अच्छे, स्वस्थ ताजे एवं अधपके फलों का चुनाव किया जाता है। अधपके फलों में पैक्टिन की मात्रा अधिक पायी जाती है परन्तु जैली में फल का स्वाद व सुगन्ध के लिए कुछ पूर्ण पके फलों का चयन भी किया जाता है।

*** फलों से पैक्टिन प्राप्त करना :** चयनित फलों को अच्छी प्रकार से धो कर काट लेना चाहिए। फिर उन्हें एक पात्र में डालकर इतना पानी डालें कि फल पानी में डूब जावे। इसको निश्चित अवधि तक उबाला जाता है जिससे कि पैक्टिन पानी में आ जावे। अब पैक्टिन मिश्रित फल रस को छानना चाहिए। इसके लिए 'जैली बैग' का प्रयोग किया जाता है। व्यावसायिक स्तर पर छानने का कार्य मशीनों द्वारा किया जाता हैं कपड़े से छानने की स्थिति में हाथ से दबाना नहीं चाहिए।

*** पैक्टिन परीक्षण :** जैली में चीनी की मात्रा कितनी हो यह पैक्टिन की मात्रा पर निर्भर करती है। पैक्टिन जाँच निम्न विधियों द्वारा की जाती है–

(1) **एल्कोहल परीक्षण :** एक बीकर में कमरे के तापमान तक ठण्डा किया एक चम्मच रस ले लिया। अब इसमें दुगुनी मात्रा में स्प्रिट या एल्कोहल सावधानी से मिलाकर हिलाते हैं। ऐसा करने से रस में उपस्थित पैक्टिन ठोस रूप में आ जाती है। इस ठोस की मात्रा से पैक्टिन का अनुमान लगाया जाता है। यदि पैक्टिन एक बड़े ढेले के रूप में आ जावे तो रस में पैक्टिन अच्छी मात्रा में है तथा 2–3 ढेले बनने पर मध्यम मात्रा में एवं छोटे छोटे बहुत से फुदकिया बनने पर पैक्टिन की मात्रा कम मानी जाती है।

(2) **जेल मीटर परीक्षण :** जेल मीटर काँच की एक अशांकित दोनों सिरों से खुली नली समान होती है जिसका लगभग एक तिहाई ऊपरी भाग 0.75 सेमी. व्यास का तथा शेष भाग 0.50 सेमी. से भी कम व्यास का होता है। परीक्षण के लिए बाँयें हाथ की पहली अंगुली तथा अंगूठे से इसको पकड़ कर छोटी अंगुली से नीचे के छिद्र को बन्द कर देते हैं। कमरे के तापमान तक ठण्डा किया रस इसमें ऊपर तक भरते हैं तथा नीचे से अंगुली हटाकर एक मिनट तक रस को गिरने देते हैं। फिर से अंगुली द्वारा छिद्र बन्द कर दिया जाता है। इसके पश्चात रस में उपस्थित पैक्टिन की मात्रा जेलमीटर के पाठ्यांक द्वारा ज्ञात कर ली जाती है।

पैक्टिन परीक्षण द्वारा चीनी की मात्रा का निर्धारण

स्प्रिट या अल्कोहल परीक्षण	जेल मीटर का पाठ्यांक	प्रति किलो रस में चीनी की मात्रा
अच्छी मात्रा	1.25	1.250 कि.ग्रा.
मध्यम मात्रा	1	1.000 कि.ग्रा.
निम्न मात्रा	0.75	0.750 कि.ग्रा.
सबसे कम मात्रा	0.5	रस को गाढ़ा करें या उसमें पैक्टिन मिलायी जावे।

*** चीनी मिलाना :** पैक्टिन की मात्रा के अनुसार रस में चीनी मिलाकर मिश्रण को पुनः गर्म किया जाता है। गर्म करते समय मिश्रण को हिलाते राहने से जलने की सम्भावना नहीं रहती है। रस में उबाल आने पर या तापमान 103° सेल्सियस होने पर मिश्रण में नींबू का सत (साइट्रिक एसिड) मिला देते हैं। अच्छी जब मिश्रण का तापमान 105° सेल्सियस हो जावे तो जैली तैयार जो जाती है। यह जैली का अन्तिम बिन्दु कहलाता है। जैली तैयार होने के अन्य संकेत निम्न है–

(1) जैली का भार चीनी के भार का 1.5 गुना होने पर जैली तैयार समझी जाी है।

(2) रिफ्रेक्टोमीटर द्वारा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी. एस.एस.) की मात्रा 70 प्रतिशत के लगभग हो जाने पर।

(3) एक बीकर या गिलास में पानी ले कर एक बून्द जैली गिराने पर यदि बिना घुले तली में बैठ जाए तो जैली तैयार समझना चाहिए।

(4) एक चम्मच में थोड़ी सी उबलती जैली ले कर उसे धीरे धीरे गिराते हैं। यदि यह बूंद–बूंद कर गिरे तो समझें की जैली अभी तैयार नहीं। तैयार जैली तिकोनी चद्दर सी बनकर नीचे लटक जाती है। इसे शीट टेस्ट कहा जाता है।

(5) जैली थर्मामीटर द्वारा – उबलते मिश्रण का जब कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) 65 प्रतिशत हो जाता हे, तब उसका तापमान 105° सेल्सियस हो जाता हैं इस समय जैली तैयार समझनी चाहिए।

*** पात्र में भरना, ठण्डा करना एवं सील करना :** जैली तैयार होने पर आग से उतारकर, उसके झाग अलग कर देते हैं। इसके बाद निर्जमीकृत चौड़े मुँह वाली बोतलों में गर्म गर्म

जैली ही भर देनी चाहिए। जैली के ठण्डा होने पर वायु से सम्पर्क न हो इसके लिए इसकी सतह पर पिघला मोम भी डाला जा सकता है। बोतलों को सील कर, लेबल लगाकर ठण्डे स्थान पर भण्डारण करते हैं।

*** जैली निर्माण मेंकठिनाइयाँ :**

(1) **जैली का न जमना :** ऐसा बहुत अधिक शक्कर मिलाना, कम व अधिक पकाना, खटास व पैक्टिन की कमी तथा देर तक पकाने से होता है।

(2) **जैली का रोना (विपिंग जैली) :** जैली के जमने पर धीरे धीरे पानी निकलकर ऊपर आना, जैली का रोना कहलाता है। ऐसी स्थिति चीनी की कमी, खटास की अधिकता तथा अपर्याप्त पैक्टिन के कारण होता है।

(3) **जैली अपारदर्शक होना :** ऐसा इसको साफ नहीं करने गन्दगी को नहीं हटाना, अधिक पकाना, अपरिपक्व फलों के प्रयोग के कारण तथा अधिक ठण्डा करने से होता है।

(4) कभी कभी अधिक चीनी मिलाने तथा कम खट्टे फलों में चीनी मिलाकर पकाने से जैली रवेदार हो जाती है।

मुरब्बा (Preserve)

मुरब्बा चीनी द्वारा परिरक्षित किये जाने वाला फल पदार्थ है। प्राचीन काल से ही मुरब्बा सेवन स्वास्थ्यवर्धक माना गया है। मुरब्बा बनाना परिरक्षण की विधियों में से एक है। सम्पूर्ण या कटे हुए फल को चीनी के उच्च सान्द्रण और चाशनी में परिरक्षित उत्पाद को ही मुरब्बा कहते हैं। फल उत्पाद आदेश के अनुसार मुरब्बे में कम से कम 55 प्रतिशत फल और 68 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस होना चाहिए।

पाक योग–

फल	–	1 कि.ग्रा.
चीनी	–	1 कि.ग्रा.
पानी	–	1 लीटर

*** फलों का चुनाव :** मुरब्बा बनाने के लिए कोई भी सख्त, आकर्षक, गूदेदार किस्म के फल का चुना किया जाता है। सामान्यतः मुरब्बे के लिए आंवला, सेब, पेठा, बेल, नाशपाती, अनन्नास, पपीता, आम, अदरक, गाजर आदि का उपयोग किया जाता है। इसके लिए फल कम से कम रेशेवाला, तीन चौथाई पका फल जो कि पर्याप्त कठोर हो, मुरब्बा बनाने के लिए अच्छा माना जाता है।

*** फलों को तैयार करना :** फलों को अच्छी तरह साफ पानी से धो कर, फल की आवश्यकतानुसार उसको तैयार किया जाता है। कुछ फलों को छीलना आवश्यक होता है जैसे– सेब व आम। इनका समान रूप से छिलका हटाना चाहिए। बड़े फलों को टुकड़ों में विभाजित करना चाहिए।

श्वेतन क्रिया (Blanching) : जो फल बिना छिलका उतारे प्रयोग में लेने होते हैं, जैसे– आंवला, इनको लगभग 10–15 मिनट तक उबलते पानी में रखकर तुरन्त ठण्डे पानी में डाला जाता है। ऐसा करने से अच्छी सफाई के साथ साथ रंग में भी सुधार आ जाता है। फलों को गोदते समय उसके बाह्य आकार में परिवर्तन नहीं आवे तथा ठीक प्रकार से सम्पूर्ण फल (गुठली तक) में गुदाई हो जावे, तो मुरब्बा भी अच्छी गुणवत्ता का तैयार होता है।

*** फलों का कसैलापन दूर करना :** फलों को अच्छी प्रकार गोदने के बाद उनको 8–10 घण्टे तक 2 प्रतिशत नमक, फिटकरी या चूने के पानी में रखा जाता है। ऐसा करने से फल कोष सख्त हो जाते हैं तथा चीनी के साथ उबालते टूटते नहीं। इसके साथ ही फलों का रंग भी आकर्षक होकर उसका कसैलापन नष्ट होता है। यह क्रिया विशेष रूप से आँवला के फलों में की जाती है। फलों को चीनी के साथ उबालने से पूर्व उनको 5 मिनट गर्म जल में उबालते हैं। ऐसा करने से फल की कोशिकायें मुलायम हो जाती है तथा उनमें चीनी की मात्रा जल्दी से व्याप्त (इमप्रेगनेट) हो जाती है।

*** चीनी मिलाना :** चाशनी के साथ मुरब्बा बनाने की निम्न विधियाँ फलों की प्रकृति तथा आवश्यकतानुसार उपयोग में लायी जाती हैं–

(1) **चीनी के घोल में पकाना–** इस विधि में चीनी की 33° ब्रिक्स की चाशनी तैयार की जाती है। इसके लिए निर्धारित मात्रा में चीनी व पानी मिलाकर, व पकाकर चाशनी तैयार की जाती है। इस चाशनी में फलों या उनके टुकड़े डालकर हल्की आँच पर पकाते हैं। चाशनी धीरे धीरे गाढ़ी होती रहती है। पकाते समय चाशनी को चम्मच से हिलाते रहते हैं। चाशनी पक कर जब 70° ब्रिक्स से ऊपर पहुंच जावे तब आँच से नीचे उतार लेते हैं। इसमें लगभग 24 घण्टे फलों को पड़े रहने देते हैं। इस समय में फलों से पानी निकलकर चाशनी में मिलने से चाशनी पतली हो जाती है। अतः चाशनी को पुनः गर्म कर 70° ब्रिक्स तक पहुँचा देते हैं। इस तरह तैयार मुरब्बे को निर्जलीकृत पात्रों में भर कर ढक्कन लगा देते हैं।

(2) **बिना पकाये चीनी में फलों को डालना–** इस विधि में बिना चीनी के घोल को पकाये भी मुरब्बा तैयार किया जाता है। इस विधि में मुरब्बा तैयार होने में समय अधिक

लगता है, परन्तु मुरब्बा अच्छा तैयार होता है। इस विधि में फलों को ब्लाचिंग करके काँच की बर्नियों या अन्य पात्रों में डाल दिया जाता है और कुल चीनी की एक तिहाई मात्रा ऊपर से डाल दी जाती है और कुल चीनी की एक तिहाई मात्रा ऊपर से डाल दी जाती है। इनको 24 घण्टे रखने पर चीनी की चाशनी बन जाती है। इसके बाद फलों को निकाल कर चाशनी में पुनः एक तिहाई चीनी मिलाकर पका लेते हैं। इस चाशनी से फलों को डालकर पुनः 24 घण्टे के लिए रख देते हैं। इस दौरान भगोने का ढक्कन बन्द रखे। 24 घण्टे बाद पुनः फलों को निकालकर चाशनी में एक तिहाई चीनी मिलाकर पकाते हैं। पकाते समय नींबू का सत डालने से चाशनी स्वच्छ हो जतीी है। इस चाशनी में फलों को पुनः 24 घण्टों के लिए रखते हैं। एक बार पुनः चाशनी को 24 घण्टों के लिए रखते हैं। एक बार पुनः चाशनी में 68° ब्रिक्स तक गर्म करके 1–2 दिन के लिए रख देते हैं। अन्तिम बार चाशनी से फलों को निकाल कर पकाते हैं तथा 70° ब्रिक्स तक पहुँचने पर फलों को डालकर मुरब्बा तैयार करते हैं।

*** बर्तनों में भरना :** मुरब्बे को काँच के बर्तन, चीनी मिट्टी के बर्तन, टिन के डिब्बों तथा व्यापक स्तर पर कनस्तरों में भी भरकर बन्द करके रखा जाता है। कुछ मुरब्बों में केवड़ा या गुलाब की सुगन्ध चाशनी में मिलायी जाती है।

पानक (Squash)

फलों से तैयार पेय पदार्थों में पानक (स्क्वैश) सबसे अधिक प्रचलित है। फल का रस, गूदा, चीनी तथा खटास को एक निशचित अनुपात में मिलाकर जो पेय पदार्थ तैयार होता है उसे पानक या ''स्क्वैश'' कहा जाता है। स्क्वैश में 25 प्रतिशत फलों का रस, 33 से 55 प्रतिशत चीनी तथा 1–2 प्रतिशत अम्लता होती है। स्क्वैश फलों के रस जैसे आम, अंगूर, संतरा, नींबू, फालसा, लीची आदि से बनाया जाता है। इसको परिरक्षित करने के लिये परिरक्षक पदार्थ तथा आकर्षक बनाने के लिये खाने वाला रंग भी मिलाया जाता है। स्क्वैश का उपयोग करने से पहले एक भाग में चार भाग पानी मिलाना उचित रहता है।

पानक बनाने की विधि :

1. फलों का चुनाव : ताजे फलों से तैयार स्क्वैश स्वादिष्ट, पौष्टिक व सुगन्धित होता है। अतः इसके लिये अच्छे, स्वस्थ, पूर्ण पके ताजे फलों का ही चुनाव करना चाहिये। सड़े गले, रोगग्रस्त, कीट लगे फलों से उत्तम गुणों का स्क्वैश तैयार नहीं होता है।

2. फलों की सफाई व रस निकालना : अच्छे, स्वस्थ फलों को साफ करके, छीलकर (सन्तरा, अन्नानास, आम आदि) तथा कुल्लुलों को बिना छीले (जामुन, अंगूर, शहतूत, फालसा) एवं कुछ फलों को काट कर (माल्टा नींबू) रस निकाला जाता है। रस निकालने के लिये बास्केट प्रेस मशीन, स्क्रूटाइप मशीन तथा ज्यूसर आदि यंत्रों का प्रयोग किया जाता हैं निकले हुए रस को ढक कर रखना चाहिए अन्यथा हवा के सम्पर्क में आने से ऑक्सीकरण के कारण कड़वापन आ सकता है। इस को छानकर साफ व रेशे रहित कर लिया जाता है।

3. चाशनी तैयार करना : फलों के भार के अनुसार निर्धारित मात्रा की चीनी से चाशनी तैयार की जाती है। चीनी में निर्धारित मात्रा में पानी मिलाकर गर्म किया जाता है। एक उबाल आने पर इसमें नींबू का सत (साइट्रिक एसिड) डाला जाता है, जिससे चीनी में उपस्थित गंदगी साफ होकर ऊपर आ जाती है। चाशनी को छान लेते हैं। साधारणतया चाशनी 70° ब्रिक्स की बनायी जाती है। घरेलू स्तर पर कुल चीनी की आधी से कम मात्रा में पानी मिला कर (5 किलो में 2.25 लीटर) चाशनी तैयार की जाती है। चाशनी को फलों के रस में मिलाने से पूर्व पर्याप्त समय तक ठण्डा करना चाहिए। गर्म चाशनी में रस मिलाने से उसकी गुणवत्ता प्रभावित होती है।

4. चाशनी में रस मिलाना : फलों के रस को चाशनी में अच्छी तरह मिलाना चाहिये। इसमें फल परिरक्षक पदार्थ व खाने का रंग भी मिलाया जाता है। लेकिन पदार्थों को पहले किसी पात्र में कुछ मिश्रण ले कर अच्छी प्रकार से मिलाना चाहिए इसके बाद इसे सम्पूर्ण स्क्वैश के घोल में मिलाया जाता है। रंग का प्रयोग नियमानुसार स्वीकृत रंगों में से ही करना चाहिये। स्क्वैश में पानी, रस, चीनी व परिरक्षक पदार्थों की एक निश्चित मात्रा का ही प्रयोग किया जाता है। एक अच्छे स्क्वैश के लिये इनकी मात्राएँ निम्न प्रकार है–

फल का नाम	रस की मात्रा	चीनी	पानी	साइट्रिक अम्ल
	(लीटर)	(कि.ग्रा.)	(लीटर)	(ग्राम)
सन्तरा	1.0	1.75	1.0	20
नींबू	1.0	2.0	1.0	–

फालसा व जामुन में परिरक्षक पदार्थ सोडियम बेन्जोएट का प्रयोग किया जाता है तथा अन्य फलों में पौटेशियम मेटा बाइ सल्फाइट का प्रयोग किया जाता है। तैयार स्क्वैश को भाप या उबलते पानी से निर्जलीकृत कर बोतलों में भर कर ढक्कन लगाकर रखा जाता है।

टमाटर का सॉस (Tomato Sauce)-

टमाटर के उत्पाद में टमाटर का सॉस सबसे लोकप्रिय है। टमाटर केचप, सॉस तथा चटनी तीनों ही समानार्थक शब्द प्रतीत होते हैं। टमाटर का सॉस अथवा कैचप टमाटर के गूदे, शक्कर, नमक, मसाले और सिरके के साथ तेज आँच में पकाकर तैयार किया जाता है। कैचप व सॉस में कोई विशेष अन्तर नहीं है। कैचप, सॉस की तुलना में कुछ गाढ़ा रहता है। कैचप में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) 25 प्रतिशत तक जबकि सॉस में यह 15–16 प्रतिशत तक होता है। इसको परिरक्षित करने में सिरका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सिरके में यह क्षमता एसिटिक एसिड के कारण होती है।

सॉस बनाने की विधि

टमाटर का चयन

टमाटर का सॉस बनाने के लिये स्वस्थ, साफ व पूर्ण विकसित लाल पके हुए टमाटरों का चुनाव किया जाता है। कच्चे, अधपके फलों से बना सॉस आकर्षक व अच्छी गुणवत्ता का नहीं बन पाता है।

गूदा व रस निकालना

टमाटरों को गर्म पानी से धोकर स्टील के भगोने या किसी पात्र में डालकर टमाटर आधे डूबने तक पानी के साथ आँच पर गर्म किया जाता है। जब अधिकतर टमाटर मुलायम हो जावे या चटख जावे तो नीचे उतार लेवें। इससे गूदा व रस अलग किया जाता है, इसके लिये साफ, स्वच्छ मलमल का कपड़ा, स्क्रूटाइप मशीन या छलनी का उपयोग किया जाता है। स्टील के हाथ वाले 'पल्पर' की मदद से टमाटर के छिलकों व बीजों से रस व गूदा अलग किया जाता है।

मसाला मिलाना

तैयार रस व गूदे को स्टील के भगोने में आँच पर गर्म करने रख दिया जाता है। इस रस में सॉस में मिलाये जाने वाले मसालों को मोटा पीस कर, कपड़े की पोटली में अच्छी प्रकार बांध कर डाल दिया जाता है। मसालों का अर्क धीरे–धीरे इसमें मिलने लगता है। एक अन्य विधि में मसालों को एक छोटे कप पानी में अच्छी तरह उबाल कर छान लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त अर्क को उबलते रस व गूदे में मिलाया जाता है। रस व गूदा उबालते समय चम्मच से हिलाते रहने से यह भगौने के पेंदे में नहीं चिपकता। उबालते समय ही सॉस में डाली जाने वाली, कुल चीनी की एक तिहाई मात्रा मिला देनी चाहिए। शेष चीनी की मात्रा सॉस तेयार होने से लगभग 10 मिनट पूर्व मिलाते हैं। अब मसाले की पोटली को उबलते रस से बाहर निकाल लेना चाहिए तथा उसको अच्छी प्रकार दबा कर मसाले का अर्क निचौड़ देना चाहिए। मसाले में लोग शीर्ष रहित ही प्रयोग करनी चाहिए अन्यथा सॉस टेनिन के कारण काले रंग का हो जाता है।

अन्तिम बिन्दु परीक्षण

सॉस के तैयार होने की पहचान के लिये निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाता है :

1. तैयार सॉस में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) 25% होती है।
2. गूदे व रस के कुल भार का सॉस 1/3 वजन में तैयार होता है।
3. गर्म सॉस की कुछ बून्दें चम्मच से एक तश्तरी में डालते है, कुछ क्षण बाद यदि सॉस, चारों तरफ पानी छोड़ता है तो और उबालना चाहिए।

परिरक्षक मिलाना

अन्तिम बिन्दु परीक्षण के आधार पर सॉस को आँच से उतार लेते हैं। निर्धारित मात्रा में सोडियम बेन्जोएट (परिरक्षक रसायन) तथा सिरका थोड़े से सॉस में अलग से अच्छी प्रकार मिला कर सम्पूर्ण सॉस में मिलाया जाना चाहिए। आवश्यक होने पर टमाटरी रंग या खाने वाला रंग भी मिलाया जा सकता है।

बोतलों में भरना

गर्म सॉस (लगभग 88°C) को छोटे मुँह वाली निर्जमीकृत बोतलों में भर कर ढक्कन लगा दिया जाता है। बोतल में 85–90°C तापमान पर 25 से 30 मिनट तक संसाधित (प्रोसेसिंग) करना चाहिए।

टमाटर सॉस हेतु सामग्री

टमाटर का गूदा	–	1 कि.ग्रा.
चीनी	–	75 ग्राम
नमक	–	10 ग्राम
प्याज (बारीक कटा)	–	50 ग्राम
अदरक	–	10 ग्राम
लहसुन	–	5 ग्राम
दालचीनी (पिसी हुई)	–	10 ग्राम
लाल मिर्च (पिसी हुई)	–	5 ग्राम
काली मिर्च बड़ी इलाचयी, सौंफ,		
जीरा (पिसा हुआ)	–	10 ग्राम प्रत्येक
लौंग शीर्ष रहित	–	5 ग्राम
सिरका	–	25 मि.ली.
या एसिटिक अम्ल	–	5 मि.ली.
सोडियम बेन्जोएट	–	0.25 ग्राम प्रति किलो

सब्जियों व फलों का अचार के रूप में परिरक्षण प्राचीन काल से किया जा रहा है। अचार स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं भूख को बढ़ाने के कारण भोजन का विशेष अंग रहा है। ''फूल व सब्जियों को साबुत या टुकड़ों में काटकर इनको मसाले, तेल, नमक, सिरका आदि के मिश्रण की मदद से सुरक्षित रखने को अचार

बनाना तथा तैयार उत्पाद को अचार कहते हैं। ''अचार सामान्यतः आम, आंवला, कटहल, करौंदा, नींबू, लसौड़ा, कैर, कमरख, प्याज, मिर्च, फूलगोभी, करेला, अदरक, लहसुन, शलजम, मूली, गाजर, सहजन आदि का बनाया जाता है। अचार को स्वादिष्ट एवं सुगन्धित बनाने के लिये प्याज, अदरक, लहसुन, मीठा नीम के पत्ते आदि का प्रयोग भी किया जाता है। अचार को परिरक्षित करने में तेल, नमक, सिरका, चीनी आदि पदार्थों का उपयोग किया जाता है।

अचार सुरक्षित रखने की विधियाँ

अचार को उपयुक्त विधि द्वारा लेक्टिक एसिड किण्वीकरण (फर्मन्टेशन) कराकर निम्न में से कोई भी परिरक्षण की विधि द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है। अचार के बनाने के बाद कुछ दिन धूप में रखना अच्छा रहता है।

1. **सिरके द्वारा परिरक्षण :** सिरके में एसिटिक एसिड की मात्रा 6.5 प्रतिशत होती है। सिरका जामुन, सीरे, अथवा 99 प्रतिशत शुद्ध ग्लेसियल एसिटिक एसिड से बनाया जा सकता है। सामान्यतः 3 प्रतिशत एसिटिक एसिड परिरक्षक पदार्थ का कार्य करता हैं सब्जी के टुकड़ों को 10 प्रतिशत नमक में 4–5 दिन रखने के बाद सिरके के पानी में लम्बे समय तक सुरक्षित रख सकते हैं। मूली, शलजम व गोभी का अचार सिरके व गुड़ के घोल में भी बनाया जा सकता है।

2. **लवण द्वारा परिरक्षण :** प्रायः अचार में 15–20 प्रतिशत नमक की मात्रा रखने पर यह परिरक्षक का कार्य करता है। नमक की अधिक मात्रा से किण्वीकरण की क्रिया प्रभावित होती है जिससे अचार खराब हो जाता है।

3. **चीनी द्वारा परिरक्षण :** किसी पदार्थ में चीनी की मात्रा 65 प्रतिशत से अधिक रखने पर यह परिरक्षण का कार्य करती है। नींबू, आम व करौंदे का मीठा अचार चीनी द्वारा परिरक्षित किया जाता है।

4. **तेल द्वारा परिरक्षण :** हमारे देश में परम्परा से ही अचार का परिरक्षण तेल द्वारा किया जाता रहा है। इस कार्य के लिये तिल, मूंगफली व सरसों का तेल द्वारा प्रयोग किया जाता है। जैसे तेल कोई जीवाणु रोधक नहीं है परन्तु अचार के ऊपर स्थित तेल की मोटी परत को जीवाणु भेद कर अचार तक नहीं पहुँच पाते हैं। तेल की मात्रा कम होने पर ही यह अचार खराब होने लगते हैं। लेहसुआ, कैर, कच्चाआम, करौंदा आदि का अचार तेल द्वारा ही सुरक्षित रखा जाता है। अचार तैयार कर अचारीय सुगन्ध के बाद शुद्ध गर्म तेल की लगभग 1–2'' मोटी परत से ढक देना चाहिए।

1. **तेल के साथ कच्चे आम का अचार–**

आम के फाँके	–	1 कि.ग्रा.
नमक	–	150 ग्राम
हल्दी	–	15 ग्राम
मेथी	–	50 ग्राम
हींग	–	2 ग्राम
सौंफ	–	25 ग्राम
कलौंजी	–	20 ग्राम
जीरा	–	10 ग्राम
काली मिर्च	–	10 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	–	8 ग्राम
सरसों का तेल	–	300 मि.ली.

2. **नींबू का अचार–**

नींबू	–	1 कि.ग्रा.
नमक	–	3. ग्राम
हल्दी	–	15 ग्राम
अदरक	–	50 ग्राम
लौंग	–	1 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	–	15 ग्राम
बड़ी इलायची	–	10 ग्राम
काली मिर्च	–	10 ग्राम

महत्वपूर्ण बिन्दु–

1. सब्जियों से भरे डिब्बों को 115–121° सेल्सियस तापक्रम पर संसाधित किया जाता है।
2. फलों से भरे डिब्बों को 100° सेल्सियस तापक्रम पर संसाधित किया जाता है।
3. डिब्बाबंदी प्रक्रिया के जनक निकॉलस एपर्ट थे।
4. अधिकांश एन्जाइम की समुचित क्रिया 30–40° सेल्सियस तापमान पर होती है।
5. शर्करा द्वारा परिरक्षित पदार्थ में 65–70% शर्करा होनी चाहिए।
6. स्क्वैश में 25 प्रतिशत फल रस, 33–35 प्रतिशत चीनी तथा 1–2 प्रतिशत अम्लता होती है।
7. जैम में कम से कम 68 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस

पदार्थ (टी.एस.एस.), अम्लता 0.5–0.6 प्रतिशत तथा 45 प्रतिशत फल का भाग हाना आवश्यक है।

8. टमाटर सॉस में 25 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) होता है।
9. भारत में लगभग 25–30 प्रतिशत फल व सब्जियाँ तुड़ाई पश्चात् बिना उपयोग किये ही खराब हो जाती हैं।
10. भारत में प्रथम परिरक्षण उद्योगशाला सन् 1920 में मुम्बई में स्थापित की गई।

अभ्यासार्थ प्रश्न :–

बहुचयनात्मक प्रश्न :–

1. हमारे देश में फल व सब्जी के कुल उत्पादन का भाग खराब हो जाता है–
   (अ) 10–15 प्रतिशत (ब) 25–30 प्रतिशत
   (स) 50–60 प्रतिशत (द) 60 प्रतिशत से अधिक
2. शर्करा द्वारा परिरक्षित पदार्थ में शर्करा की मात्रा होनी चाहिए–
   (अ) 30–40 प्रतिशत (ब) 40–50 प्रतिशत
   (स) 50–60 प्रतिशत (द) 65–70 प्रतिशत
3. सब्जी की डिब्बाबन्दी में नमक का प्रतिशत रखा जाता है–
   (अ) 5 प्रतिशत (ब) 6 प्रतिशत
   (स) 8 प्रतिशत (द) 2 प्रतिशत
4. पानक में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा होती है–
   (अ) 60 प्रतिशत (ब) 40 प्रतिशत
   (स) 30 प्रतिशत (द) 65 प्रतिशत
5. पैक्टिन परीक्षण किया जाता है–
   (अ) जैली थर्मामीटर (ब) जेल मीटर
   (स) लेक्टोमीटर (द) हाइड्रो मीटर
6. टमाटर सॉस में परिरक्षण के रूप में प्रयोग लिया जाता है–
   (अ) नमक (ब) सोडियम बेन्जोएट
   (स) चीनी
   (द) पोटेशियम मेटा बाइसल्फाइट

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

14. टमाटर सॉस में अस्थायी परिरक्षक के रूप में कौन सा पदार्थ उपयोग में लिया जाता है?
16. डिब्बाबन्दी में डिब्बा बन्द करते समय कितना तापक्रम होना चाहिए?
17. पानक में फलों का रस कितने प्रतिशत होता है?
18. मुरब्बा किसे कहते हैं?
19. कैचप व सॉस में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा बताइये?
20. कैचप व सॉस बनाते समय चीनी कब मिलाना चाहिए?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

23. फलों व सब्जियों का परिरक्षण करना क्यों आवश्यक है?
25. फल परिरक्षण में कौन–कौन से रसायन का उपयोग किया जाता है?
26. संसाधन किसे कहते हैं?
27. डिब्बाबन्दी किसे कहते हैं?
28. पानक बनाते समय चाशनी तैयार करने की विधि लिखिए।
29. जेल मीटर का क्या उपयोग है?
30. सिरके द्वारा अचार परिरक्षण की विधि लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

31. भारत में फल तथा सब्जी परिरक्षण व्यवसाय का भविष्य व उसमें आने वाली बाधाओं का वर्णन कीजिए।
32. फल परिरक्षण की विभिन्न अस्थायी व स्थायी विधियाँ लिखिए।
33. फलों की डिब्बाबन्दी की विधि का वर्णन कीजिए।
34. संतरा का पानक बनाने की विधि लिखिए।
36. टमाटर का सॉस बनाने की विधि लिखिए।

उत्तरमाला

1. ब 2. द 3. द 4. ब 5. ब 6. ब